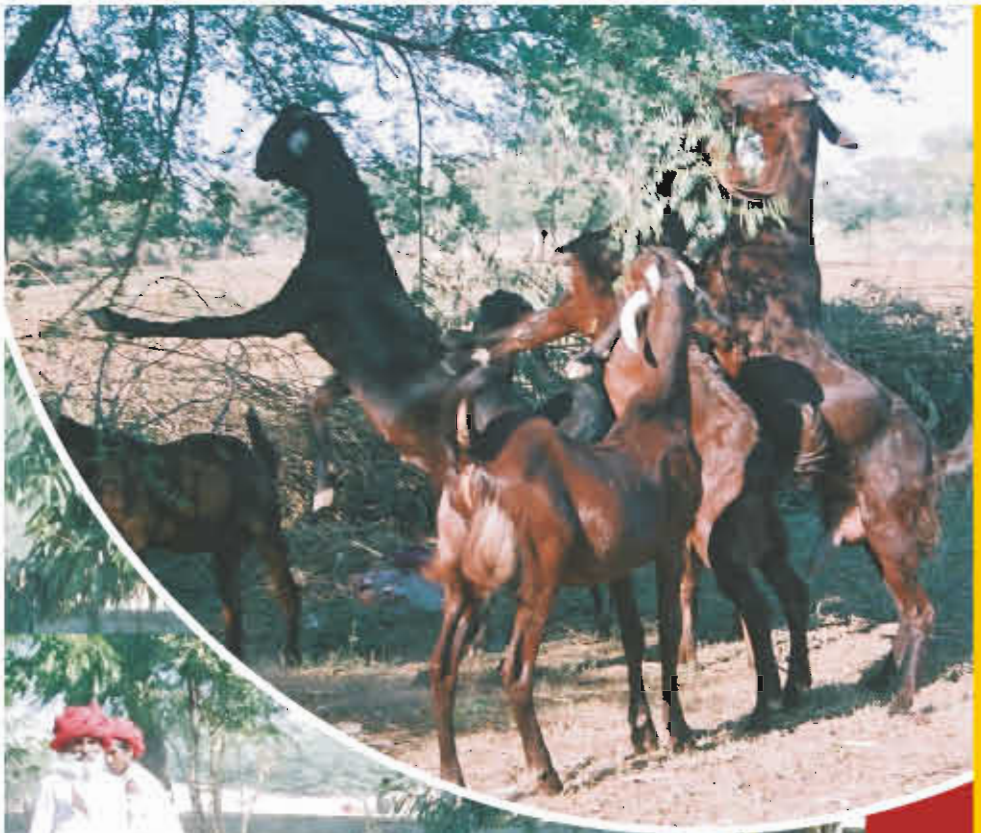

राजस्थान सरकार

# बकरी पालन

## के लिए व्यावहारिक जानकारियाँ

पशुपालन विभाग, राजस्थान

# बकरी पालन
## के लिए व्यावहारिक जानकारियाँ

निदेशक, पशुपालन विभाग
राजस्थान, जयपुर

प्रकाशक :

**पशुपालन विभाग, राजस्थान**

पशुधन भवन, टोंक रोड़, जयपुर–302015

फोन न. : 0141–2743492, 2742243, 2742984

फैक्स न. : 0141–2743267

Website : www.animalhusbandry.rajasthan.gov.in

# अनुक्रमणिका


| क्र.सं. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | बकरी पालन | 01 |
| 2. | बकरी आवास | 03 |
| 3. | बकरियों का पोषण | 08 |
| 4. | बकरियों के लिए चारा फसल–चक्र | 14 |
| 5. | बकरियों के बच्चों का रख–रखाव | 17 |
| 6. | बकरी फार्म पर होने वाले प्रमुख प्रबन्ध कार्य | 22 |
| 7. | बकरी उत्पादन और प्रजनन | 24 |
| 8. | बकरियों की जनन समस्यायें : रोकथाम और उपचार | 28 |
| 9. | बकरी के जीवाणु जनित रोग | 31 |
| 10. | बकरी के विषाणु जनित रोग | 37 |
| 11. | बकरियों में परजीवी रोग एवं उनकी रोकथाम | 39 |
| 12. | बकरियों के कुछ अन्य रोग | 44 |
| 13. | बकरियों के स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव | 46 |
| 14. | बकरी के दूध दुहने की पद्धतियाँ | 49 |

# बकरी पालन

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। उनकी आजीविका का मुख्य साधन कृषि एवं पशुपालन है। इन लोगों में से लगभग एक तिहाई लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करते हैं जिनमें ज्यादातर सीमान्त किसान एवं कृषि मजदूर आते हैं। यह लोग साधनों के अभाव के कारण गाय, भैंस जैसे बड़े एवं खर्चीले पशुओं को नहीं रख सकते हैं। बकरी पालन कम खर्चीला एवं अधिक लाभकारी होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वरदान साबित हुआ है।

हमारे देश में बकरियों की कुल संख्या लगभग 12 करोड़ है जो, विहंगम पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर समुद्रीय तटों की विषमतम परिस्थितियों तक फैली हैं। विश्व की कुल बकरी संख्या की लगभग 20 प्रतिशत बकरियाँ भारत में ही पाली जाती हैं। भारत में इनकी 20 स्थापित नस्लें हैं। विशेष बात यह है कि यहाँ इन नस्लीय बकरियों की संख्या से कई गुना अधिक अवर्णित नस्ल की बकरियाँ पाई जाती हैं। बकरियाँ निम्न कोटि के चारे को खाकर उसे मानवोपयोगी उच्च कोटि के खाद्य पदार्थों में परिवर्तित करती हैं जो मानव जाति को दुग्ध, मांस एवं रेशा जैसी बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में उपलब्ध होती है। आजकल मनुष्य जमीन का उपयोग या तो अपने लिये खाद्यान्न उगाने या कल–कारखाने एवं आवास बनाने में करने लगा है। चरागाह प्रायः समाप्त हो चले हैं। ऐसे में बड़े जानवरों को पालना असम्भव हो गया है। ऐसी परिस्थिति में बकरी जैसा छोटा पशु जो सड़कों, नहरों, नदियों आदि के किनारों पर चरकर विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवन यापन करते हुए मानव के लिये उपरोक्त वस्तुओं का उत्पादन करने में सामर्थ्यवान है। बकरियों की संख्या अधिक होने के बावजूद भी भारत में इनसे प्राप्त उत्पादों की भागेदारी भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण बकरियों का अवर्णित एवं निम्न अनुवांशिक नस्ल का होना, प्रजनन एवं जनन संबंधी तकनीकी जानकारियों के उपयोग का अभाव, कुप्रबंधन एवं अल्पपोषणता आदि हैं। अतः बकरी उद्यम को सफलतापूर्वक चलाने के लिये इनकी नस्ल का सुधार अति आवश्यक है।

बकरी एक बहुउपयोगी और सीधा–साधा पशु है, जो अपने छोटे कद, हर तरह की जलवायु में रहने की क्षमता तथा रहन–सहन की आसान आदतों के कारण आज देश के सभी वर्गों का चहेता पशु है। बकरी पालन को कम पूंजी एवं कम साधन से आरंभ कर परिवार के भरण–पोषण के लिये नियमित आय प्राप्त की जा सकती है। राजस्थान में बकरी पालन चिरकाल से गाँव के भूमिहीन और निर्धन लोगों की जीविकोपार्जन का सशक्त साधन रहा है, लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि आज भी बकरी पालक इसे वैज्ञानिक ढंग से नहीं पाल रहे हैं। बकरी पालक उचित रख–रखाव, संतुलित पोषाहार और बेहतर प्रबन्धन के द्वारा बकरियों को रोगग्रस्त होने से बचाकर निम्न प्रकार से आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकता है–

1. दुधारू बकरियों को बेचकर।
2. बकरों को माँस के रूप में बेचकर।
3. ऊन व खाल द्वारा प्राप्त आय से।
4. मींगनियों को खाद के रूप में बेचकर।

यदि बकरी पालक वैज्ञानिक दृष्टि से बकरी पालन व प्रबंधन करें तो निश्चित ही उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होगा जिसके लिए निम्न बातों की जानकारी होना अति आवश्यक है–

**राजस्थान की मुख्य नस्लें :**

राजस्थान में मुख्य रूप से सिरोही , मारवाड़ी, जखराना एवं जमनापारी नस्ल की बकरियाँ पायी जाती हैं।

**सिरोही :**

यह नस्ल राजस्थान में अरावली पर्वतमालाओं के आसपास के क्षेत्रों में तथा सिरोही, अजमेर, नागौर, टोंक, राजसमंद एवं उदयपुर जिलों में मुख्य रूप से पायी जाती हैं। इस नस्ल में रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं सूखा सहन करने की क्षमता अन्य बकरियों की अपेक्षा अधिक होती है। इस नस्ल के पशु का आकार मध्यम एवं शरीर गठीला होता है। यह नस्ल मुख्यतः मांस एवं दूध के लिए पाली जाती है। इसके शरीर का रंग हल्का एवं गहरा भूरा व शरीर पर काले, सफेद एवं गहरे काले रंग के धब्बे होते हैं। कुछ पशुओं में गले के नीचे अंगुली जैसी दो गूलरे (मांसल भाग) एवं मुँह के जबड़े के नीचे की तरफ दाढ़ीनुमा बाल पाये जाते हैं। कान चपटे, नीचे की तरफ लटके हुए, लम्बे एवं पत्तीनुमा होते हैं तथा पूंछ छोटी एवं ऊपर की तरफ मुड़ी हुई होती है। प्रजनन योग्य नर का औसत शरीर भार 40–50 किलो व मादा का शरीर भार 30–35 किलो होता है। इनका दुग्ध उत्पादन 100 किग्रा. (115 दिनों में) होता है। इस नस्ल की बकरिया प्रायः एक साथ 2 बच्चो को जन्म देती हैं।

**मारवाड़ी :**

यह नस्ल राजस्थान में जोधपुर, पाली, नागौर, बीकानेर, जालौर, जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में पायी जाती हैं। यह मध्यम आकार की काले रंग की बकरी है। इसका शरीर लम्बे बालों से ढका होता है। कान चपटे व मध्यम आकार के व नीचे की ओर लटके होते हैं। नर का औसत शरीर भार 30–35 किलो व मादा का शरीर भार 25–30 किलो होता है। इनके शरीर से वर्ष में औसतन 200 ग्राम बालों की प्राप्ति होती है जो गलीचे/नमदा आदि बनाने के काम आते हैं। इनका दुग्ध उत्पादन 95 किग्रा. (115 दिनों में) होता है।

**जखराना :**

यह नस्ल राजस्थान के अलवर जिले एवं आस पास के क्षेत्रों में पायी जाती है। यह आकार में बड़ी तथा काले रंग की होती है। इनके मुँह व कानों पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इनका दुग्ध उत्पादन 120 किग्रा. (115 दिनों में) होता है तथा वर्ष भर में इनका औसत शारीरिक भार 20 किलो तक पहुंच जाता है। इनके व्यस्क नर का भार औसतन 55 कि.ग्रा. तक होता है।

**जमनापारी :**

यह नस्ल मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के चकरनगर व गढ़पुरा इलाके में बहुतायत से पायी जाती हैं। यह क्षेत्र यमुना व चम्बल नदियों के कछार में स्थित है। ये बकरियाँ, बीहड़ व खादर क्षेत्रों में जहाँ पर चराई की अच्छी सुविधा उपलब्ध हो तो खूब पनपती हैं। वर्तमान समय में इनकी मूल नस्ल की संख्या 6 हजार से भी कम है। इस कारण इनका त्वरित संवर्धन परम आवश्यक है। यह एक बड़े आकार की बकरी है। इसका रंग सफेद होता है और कभी–कभी गले व सिर पर धब्बे भी पाये जाते हैं। इनकी नाक उभरी हुई होती है जिसे रोमन नोज कहते है। इस पर बालों के गुच्छे होते हैं। रोमन नोज एवं जांघों के पिछले भाग में सफेद बाल इस नस्ल की मुख्य पहचान है। इनके कान काफी बड़े व लटके हुए होते हैं। नर व मादा दोनों में ही प्रायः सींग पाये जाते हैं। इनके वयस्क नर एवं मादा का शारीरिक भार क्रमशः 44 एवं 38 कि.ग्रा. होता है। इनकी लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 77/75 एवं 78/75 सेंमी. होती है। यह भी एक दुकाजी नस्ल है परन्तु इससे दूध उत्पादन सबसे अधिक प्राप्त किया जाता है। ये बकरियाँ 194 दिनों के दुग्धकाल में 200 कि.ग्रा. औसतन दुग्ध देती है। वर्ष भर में इन बकरियों का शारीरिक भार 21–26 कि.ग्रा. तक हो जाता है। इसे नस्ल सुधार कार्यक्रमों में भी प्रयोग किया जाता है।

# बकरी आवास

पशुओं में जलवायु के साथ–साथ आवास, उपकरण एवं पालने के ढंग भी उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते हैं। बकरियों के लिये 170°F से 270°F के बीच का तापमान एवं 15 मि.मी. पारे के नीचे की आर्द्रता काफी सुविधाजनक होती है। भारतवर्ष एशिया के दक्षिण में 8.40 उत्तर एवं 37.60 उत्तर अक्षांश तथा 68.70 पूर्व और 97.250 पूर्व देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। कर्क रेखा ठीक इसके बीच में से गुजरती है। समुद्र तल से ऊँचाई, तापमान, हवा की गति, वर्षा, आर्द्रता इत्यादि के आधार पर बकरी पालन हेतु देश को विभिन्न भागों में विभक्त किया जा सकता है। हर भाग में कुछ पहाड़ी स्थान आते हैं, जिनकी आवासीय आवश्यकताऐं अलग–अलग होती हैं। अन्य पालतू जानवरों की तरह बकरियों को भी साफ–सुथरे एवं हवादार स्थान में रखा जाना चाहिए, जिससे उनका समुचित विकास हो सके तथा उनकी उत्पादन क्षमता में कोई कमी न आये। गाँवों में पशुपालक अपनी दूध एवं मांस की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु थोड़ी संख्या में बकरियों को पालते हैं। अधिक उत्पादन होने पर अथवा जरूरत पड़ने पर इनका विक्रय भी करते हैं। ये किसान अपनी बकरियों को अपने घर में ही अथवा घर के पास रहने की व्यवस्था करते हैं। देश के कुछ भागों में बड़ी संख्या में बकरियों को पाला जाता है। ये बकरियाँ मुख्यतः चरकर ही अपनी आवश्यकताओं को पूरा करती है।

वर्तमान में बकरी पालन एक व्यवसाय के रूप में अपने को स्थापित कर रहा है। देश में अनेक व्यवसायी मांस के उत्पादन को बढ़ाने के लिए बकरा पालन हेतु आगे आ रहे हैं। आजकल बकरियों को या तो एक जगह रखकर वहीं उन्हें दाना, भूसा एवं चारा देते हैं अथवा कुछ समय के लिये चरने भेज देते है तथा साथ ही आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ दाना, भूसा एवं चारा देते हैं। जब बकरियों को अधिक संख्या में अधिक समय तक एक साथ रखते हैं, तो आवास, उनकी उत्पादन क्षमता एवं बीमारियों को भी प्रभावित करता है। साथ ही साथ इस तरह के बकरी पालन में खर्चे का अधिकांश हिस्सा दाना–चारा खरीदने में व्यय हो जाता है। इसके लिए जरूरी है कि दाने चारे के भण्डारण में तथा खिलाने में कम से कम नुकसान हो। बकरियों को खिलाने के उपकरण इस तरह के होने चाहिए कि उससे कम से कम दाना चारा गिरे एवं उसमें बकरियों का पेशाब एवं मैंगनी न जाने पाये। एक सर्वेक्षण में पाया गया कि बकरियों के आवास के प्रकार, जगह का क्षेत्रफल, वायु आने जाने का क्षेत्रफल, बनाने में लगने वाले सामान इत्यादि का विभिन्न बकरी प्रक्षेत्रों में कोई मानकीकरण नहीं है तथा एक ही जलवायु वाले विभिन्न प्रक्षेत्रों में अलग–अलग तरह के बकरी आवास एवं उपकरण पाये गये। आवासों में हवा आने–जाने का क्षेत्रफल भी अलग–अलग एवं कम था। दाना एवं चारा खाने के उपकरणों में बहुत भिन्नता थी।

1. **बकरियों पर जलवायु का प्रभाव** :– विभिन्न मौसमों का प्रभाव बकरियों की श्वसन दर, हृदय गति, तापमान, पानी पीने और खाने, दूध देने की क्षमता, उनकी वृद्धि दर आदि पर पड़ता है। बकरियों के शरीर में स्थित रोग छिद्र गर्मी में अहम भूमिका निभाते हैं। इससे शरीर ठण्डा रहता है तथा तापमान को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। बकरियों में पानी को नियंत्रित करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। गर्म वातावरण में अपने को अनुकूल करने के लिए कुछ बकरियों में श्वसन दर बढ़ जाती है तो कुछ त्वचा में स्थित स्वेद ग्रन्थियों से ज्यादा पसीना निकालती हैं, जिससे त्वचा ठण्डी रहती है। अधिक ठण्ड में बकरियों में थाइरोक्सीन हारमोन का अधिक स्राव होता है, जिससे शरीर का तापमान बढ़ाने के लिए अधिक ऊर्जा का उत्पादन होता है। ऊर्जा ह्रास के कारण दूध का उत्पादन तथा बकरियों की बढ़त कम हो जाती है।

   आर्द्र जलवायु में वर्षा के कारण भीगने से बकरियों में न्यूमोनिया हो जाता है तथा परजीवी भी आक्रमण कर

देते हैं। बकरियों का आवास बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उनको अत्यधिक गर्मी, सर्दी एवं आर्द्रता से बचाया जाये तथा उन्हें साफ–सुथरे एवं हवादार आवास में रखा जाये, जिससे कि उनका उचित विकास हो, दूध देने की क्षमता बढ़े, बीमारियाँ कम हों तथा मृत्युदर घटे।

2. **बकरियों को आवासीय स्थान की आवश्यकता :–** बकरियों को आवास में छत से ढ़की एवं खुली दोनों जगहों की जरूरत पड़ती है। ढ़की जगह में जानवर धूप, ओस एवं वर्षा से बचता है तथा खुली जगह (बाड़ा) में वह आराम तथा व्यायाम करता है। पूरे आवास का 1/3 ढ़की जगह के रूप में तथा 2/3 हिस्सा बाड़े के रूप में रखा जाता है। बकरे एवं बकरियों को उनकी उम्र एवं कार्य के अनुसार जगह की आवश्यकता घटती–बढ़ती रहती है। बकरियों को आवश्यकतानुसार जगह न देने पर उनका स्वास्थ्य गिरता है, उनकी बढ़त कम हो जाती है तथा उत्पादन क्षमता में कमी आती है। बकरियों को निम्नलिखित जगह की जरूरत पड़ती है :–

| उम्र | ढ़की जगह की आवश्यकता (वर्ग मीटर में) | बाड़े की आवश्यकता (वर्ग मीटर में) |
|---|---|---|
| 3 महीने तक के बच्चे | 0.2–0.3 | 0.4–0.6 |
| 3–9 महीने तक के बच्चे | 0.6–0.75 | 1.2–1.5 |
| 9–12 महीने तक के बच्चे | 0.75–1.0 | 1.5–2.0 |
| युवा बच्चे | 1.0 | 2.0 |
| वयस्क बकरे | 1.5–2.0 | 3.0–4.0 |
| ग्याभिन एवं दूध देने वाली बकरियाँ | 1.5 | 3.0 |

3. **बकरियों को हवा के आने–जाने के लिये जगह की आवश्यकता :–** पशुओं की आक्सीजन की जरूरत को पूरा करने के लिये, आवास के फर्श की नमी को सुखाने हेतु, आर्द्रता कम करने के लिये तथा आवास में पैदा हुई गैसों को बाहर निकालने हेतु हवा की जरूरत पड़ती है। दीवारों में हवा आने के लिए जो जगह बनायी जाती है उसी से आवास में रोशनी एवं धूप भी आती है। बकरी आवासों का हवादार होना अति आवश्यक है। मौसम के अनुसार हवा के आने–जाने की जगहों को कम ज्यादा किया जा सकता है।

| मौसम | हवा के आने–जाने के लिये जगह की आवश्यकता |
|---|---|
| **सम मौसम** | फर्श की 25 प्रतिशत जगह, हवा के आने–जाने के लिए दीवारों में बनाई जाये। |
| **गर्म मौसम** | फर्श की 70 प्रतिशत जगह, हवा के आने–जाने के लिए दीवारों में रखी जाये। दोपहर के आसपास इसे ढ़का जा सकता है। |
| **वर्षा का मौसम** | लम्बाई वाली दीवारें पूरी खुली रखी जायें। |
| **सर्दी का मौसम** | फर्श की 2 से 10 प्रतिशत जगह हवा के लिये दीवारों में बनाई जायें। |

आवास के अंदर हवा की गति बाहर की गति की 40 प्रतिशत ही रहती है। हवा आने वाली दिशा में 30 से 50 प्रतिशत जगह खुली रखी जाती है।

(i) **दिशा :–** हमारे देश की जलवायु के लिये, पूर्व–पश्चिम दिशा के बकरी आवास, उत्तर–दक्षिण दिशा वाले आवासें से अधिक आरामदायक होते हैं। पूर्व–पश्चिम दिशा के आवासों में जाड़ों में धूप अन्दर तक जाती है तथा गर्मी में धूप को आसानी से अन्दर जाने से रोका जा सकता है। दिशा तय करने में हवा बहने की दिशा पर भी विचार किया जाता है। यदि हवा बहने की दिशा पूर्व से पश्चिम की तरफ

है तो बकरी आवास को हवा चलने की दिशा के 0 से 45 के कोण पर बनाया जा सकता है। अन्य दिशा में बकरी के आवास को हवा चलने की दिशा के 0 से 30 के कोण पर बनाया जा सकता है।

(ii) **छत** :– खुले आसमान के नीचे रखने के बजाय बकरियों को यदि एक ऐसी जगह पर रखा जाये जो कि केवल ऊपर से ढ़की हो तो उससे भी उनको राहत मिलती है। 30 प्रतिशत गर्मी ऊपर से आती है। ऊपर ढ़कने से यह गर्मी पशुओं तक नहीं पहुँच पाती। अधिकांशतः गाँवों में पशुओं के लिये छप्पर की छतें बनाई जाती है तथा बड़े प्रक्षेत्रों पर सीमेंट अथवा लोहे की जी.आई. नालीदार चद्दरों से पशुओं के बाड़े बनाये जाते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों से पता चला है कि एसबेस्टस अथवा लोहे की चद्दरों की तुलना में छप्पर गर्मी अथवा ठण्ड रोकने में ज्यादा अनुकूल है, पर छप्पर जल्दी खराब हो जाते हैं तथा इनमें आग इत्यादि लगने का भय बना रहता है। छप्पर पर मिट्टी के गारे, भूसे एवं तारकोल को मिलाकर लेप करके इसे सुधारा जा सकता है, जिससे कि ये जल्दी खराब नहीं हो, भीगे नहीं तथा आग भी देर से पकड़ें। प्रयोग से यह देखा गया है कि यह सुधरे छप्पर, अन्य छप्परों से ज्यादा अच्छे तथा गर्मी, ठण्ड तथा नमी को रोकने में सहायक होते हैं। आजकल बाजार में 'आर. एम.पी.' की चद्दरे भी उपलब्ध हैं। इनमें गर्मी तथा ठण्ड रोकने की क्षमता भी अच्छी है तथा ये बकरी आवास की छत बनाने के लिये काम में लाई जा सकती है। क्षेत्र में पाये जाने वाले सामानों से बनी जैसे– खपरैल, पत्तर इत्यादि अथवा पक्की छतें (ईटें, सीमेन्ट, सीमेन्ट कंक्रीट) भी काम में लाई जा सकती है। छत यदि एसबेस्टस या लोहे के चद्दरों की है तो उस पर 2'' से 4'' मोटी छप्पर गर्मी में डाली जा सकती है। छत को दीवार से करीब एक मीटर आगे निकाल देना चाहिए, इससे धूप एवं वर्षा से बचाव किया जा सकता है।

(iii) **दीवारे** :– चौड़ाई वाली पूर्व एवं पश्चिम की दीवारें ऊपर तक ईटों की बनाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सीमेंट एवं बालू के गारे का प्रयोग करें। लम्बाई वाली उत्तर एवं दक्षिण की दीवारें जमीन से 75 से0मी0 से 1 मीटर ऊँचाई पर बनाई जाती है। उसके बाद छत तक जाली लगा दी जाती है। इससे हवा की गति में कोई रूकावट नहीं आती। दीवार के ऊपर खुली जगह की ऊँचाई एवं लम्बाई का अनुपात 1/4 : 3/4 होना चाहिए।

(iv) **फर्श** :– बकरी आवासों का फर्श अधिकाशतः मिट्टी का ही होता है, जो बकरियो के पेशाब इत्यादि को सोख लेता है तथा ऊष्मा अवरोधक का भी कार्य करता है। बीच–बीच में ऊपर की मिट्टी की गुड़ाई कर देनी चाहिए तथा वर्ष में एक बार ऊपरी मिट्टी को बदल देना चाहिए। वर्षा ऋतु के पहले मिट्टी को बदलना उचित है। फर्श की गुड़ाई अथवा मिट्टी बदलने के बाद फर्श पर चूने का छिड़काव उचित रहता है। वैसे भी कुछ समय के अन्तराल पर चूने का छिड़काव करते रहना चाहिए।

(v) **बाड़ा** :– बकरियों का बाड़ा उनके छत वाले आवास से सटा हुआ होता है। बाड़ा चारो तरफ से घिरा होता है। 1.5 मीटर से 2 मीटर ऊँची 4'' की जाली (चैन लिंक) इस कार्य हेतु प्रयोग की जा सकती है। जाली लगाने हेतु प्रत्येक 2 से 3 मीटर की दूरी पर लकड़ी की बल्ली अथवा लोहे के खम्बे जमीन में गाड़े जाते है। जाली को सीधा रखने के लिये उसके ऊपरी एवं नीचे हिस्से में लोहे (जी.आई.) के मोटे तार डाले जा सकते है। बाँस एवं बल्लियों से भी बाड़े बनाये जा सकते हैं। बाड़े का क्षेत्रफल छत वाली जगह का दुगना रखा जाता है।

4. **बकरी आवास की लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई** :– बकरी आवास की लम्बाई आवश्यकतानुसार रखी जा सकती है परन्तु हवादार बनाने हेतु चौड़ाई किसी भी हालात में 12 मीटर से ज्यादा नहीं रखनी चाहिए। चौड़ाई को जगह के अनुसार 6 मीटर से 8 मीटर के बीच में रखना उचित रहता है। इससे हवा के बहाव

में कोई दिक्कत नहीं आती है। इसी तरह, आवास की ऊँचाई, किनारे पर 2.7 मीटर से कम नहीं रखना चाहिए। अधिकांशतः बकरी आवासों की लम्बाई 20 मीटर, चौड़ाई 6 मीटर तथा किनारे पर ऊँचाई 2.7 मीटर रखी जाती है।

5. **ध्यान रखने योग्य अन्य बातें** :– बकरी आवासों को ऊँची जगह पर बनाना चाहिए। वहाँ से वर्षा के जल के निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। मेमनों, गर्भवती एवं बीमार बकरियों के आवासों को शुरू में ही बनाना चाहिए जिससे उनका उचित ध्यान रखा जा सके। चारागाह अथवा चारा पैदा करने वाले खेत सबसे बाद में होने चाहिए। दो बकरी आवासों के बीच 8 मीटर का अंतर होना चाहिए जिससे कि हवा के प्रवाह में बाधा न हो। बकरी प्रक्षेत्र में पेड़, पौधे, झाड़ियाँ, घास इत्यादि को लगाना चाहिए जिससे कि उसके अंदर बहने वाली हवा ठण्डी हो। वैसे तो पौधे एवं झाडियाँ हवा के प्रवाह को रोकते हैं, पर यदि कम ऊँचाई के हों तथा आवास से 2 मीटर की दूरी पर हो तो यह हवा के प्रवाह को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इसी तरह प्रक्षेत्र में लगे पेड़ों की डालियाँ 3 मीटर की ऊँचाई तक काट देने से आवास के अंदर के प्रवाह में कोई दिक्कत नहीं आती है। पेड़ पौधे वातावरण को शुद्ध रखने में भी सहायक होते हैं। इनकी पत्तियाँ एवं घासें बकरियों के चारे के लिए भी काम में लाई जा सकती है।

   आवास की छत पर सफेदी (चूना एवं सफेद सीमेंट बराबर मात्रा में मिलाकर) करा देने से गर्मी के मौसम में आवास कम गर्म होते है। इसी तरह यदि छत के ऊपर छप्पर डाल दिया जाये या फैलने वाली बेलें चढ़ा दी जावें तो आवास के अंदर गर्मी का प्रभाव कम हो जाता है। लोहे की चद्दरों वाले आवासों के ऊपर सफेद पेंट भी किया जा सकता है।

6. **उपकरण** :– बकरी के दाने तथा चारे में सबसे ज्यादा लागत लगती है। साथ ही सबसे ज्यादा नुकसान दाने, भूसे तथा चारे को रखने एवं उन्हें खिलाते समय होता है। अधिकांशतः बकरियों को भोजन ऐसे उपकरणों मे दिया जाता है जिसमें बकरियाँ या तो पैर डाल देती हैं या उनमें उनका पेशाब एवं मेंगनी चली जाती हैं। खाने के समय काफी दाना–चारा बाहर भी गिर जाता है। अधिकतर प्रचलित उपकरण या तो दाने या भूसे के लिये है अथवा चारे के लिये। इस विसंगतियों को दूर करने के लिए केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान ने कुछ ऐसे उपकरण बनाये हैं जिनमें दाना, भूसा एवं हरा चारा सभी कुछ एक साथ अथवा अलग–अलग खिलाया जा सकता है। इन उपकरणों में दाने चारे का नुकसान भी कम होता है तथा उसमें पेशाब अथवा मेंगनी नहीं रहती है। वयस्क जानवरों एवं बच्चों के लिये अलग–अलग तरह के उपकरण बनाये गये हैं। बच्चों के पानी पीने के लिये भी सुधरे उपकरण विकसित किये गये हैं।

   (i) **षटकोणीय दाना–चारा उपकरण** :– यह वयस्क जानवरों के दाना, भूसा एवं चारा खाने के लिये है। इस उपकरण को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है। आधार अथवा स्टैण्ड जो कि लौहे का बना होता है इसके ऊपर षटकोणीय दाना–चारा खाने का फीडिंग ट्रफ लगा होता है। फीडिंग ट्रफ के बीच में दाने, भूसे एवं चारे को बराबर फैलाने के लिये एक षटकोणीय नुकीला भाग ऊपर उठा देते हैं। यह जी. आई. की चद्दर का होता है। फीडिंग ट्रफ के ऊपर एक षटकोणीय रैक लगी होती है, जिसमें भूसा एवं हरा चारा रखा जाता है। इस उपकरण में 12 से 15 बकरे अथवा बकरियाँ दाना–चारा खा सकते हैं तथा इसकी अनुमानित लागत 1500 रूपये है। इसमें जानवर चारों ओर से खाते हैं। इसे एक छोटी कार्यशाला में चद्दरों एवं वैल्डिंग का कार्य करने वाले कारीगर बना सकते है।

   (ii) **आयताकार दाना चारा उपकरण** :– षटकोणीय फीडर की तरह ही आयताकार दाना चारा उपकरण को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है। अंतर केवल यह है कि इसके सभी भाग आकार में आयताकार होते हैं। इस उपकरण में 9 से 12 बकरे अथवा बकरियाँ आराम से खा सकती है

तथा इसकी अनुमानित लागत 1500 रूपये है। यह वयस्क पशुओं के लिये उपयोगी है। इसमें जानवर दो तरफ से खाते है। इसे चद्दरों एवं वैल्डिंग का काम करने वाले कारीगरों द्वारा बनाया जा सकता है।

(iii) **बच्चो के दाना–चारे एवं जल देने के उपकरण** :– तीन उपकरण केवल दाना–पानी के लिये बनाये गये हैं, जिनकी अनुमानित लागत 300 रूपये से 500 रूपये के बीच में है। सी.आई.आर.जी. के.एफ.आर. II छः महीने तक के बच्चों के लिये उपयुक्त हैं। इसमें दोनों तरफ से आठ से दस बच्चे खा सकते है। सी.आई.आर.जी.के.एफ.आर. III में एक ही तरफ से खाया जा सकता है तथा इसमें 4–5 बच्चे खा सकते हैं। सी.आई.आर.जी.के.एफ. आर. I में 8 से 10 बच्चें खा सकते है। इसमें पानी पीने के लिये भी अलग से व्यवस्था है। यह 12 महीने तक के बच्चों के लिये ठीक है। सी.आई.आर. जी.के.डब्ल्यू सी. 1 एवं सी.आई.आर..जी.के.डब्ल्यू बी. 1 बच्चों के पानी पिलाने के उपकरण हैं तथा 12 महीने तक के बच्चों के लिये ठीक है इनमें 8 से 10 बच्चे पानी पी सकते हैं। 3 महीने से कम उम्र के बच्चों के लिए लटकने वाले खाने के उपकरण कार्य में लाये जा सकते है। इन उपकरणों को बनाने के लिये, लोहे की चद्दर, सरिया, एंगिल, आयरन, पाइप इत्यादि की जरूरत पड़ती है। इन्हें चद्दर एवं वैल्डिंग का काम करने वाले मिस्त्री बना सकते हैं तथा लागत भी कम है।

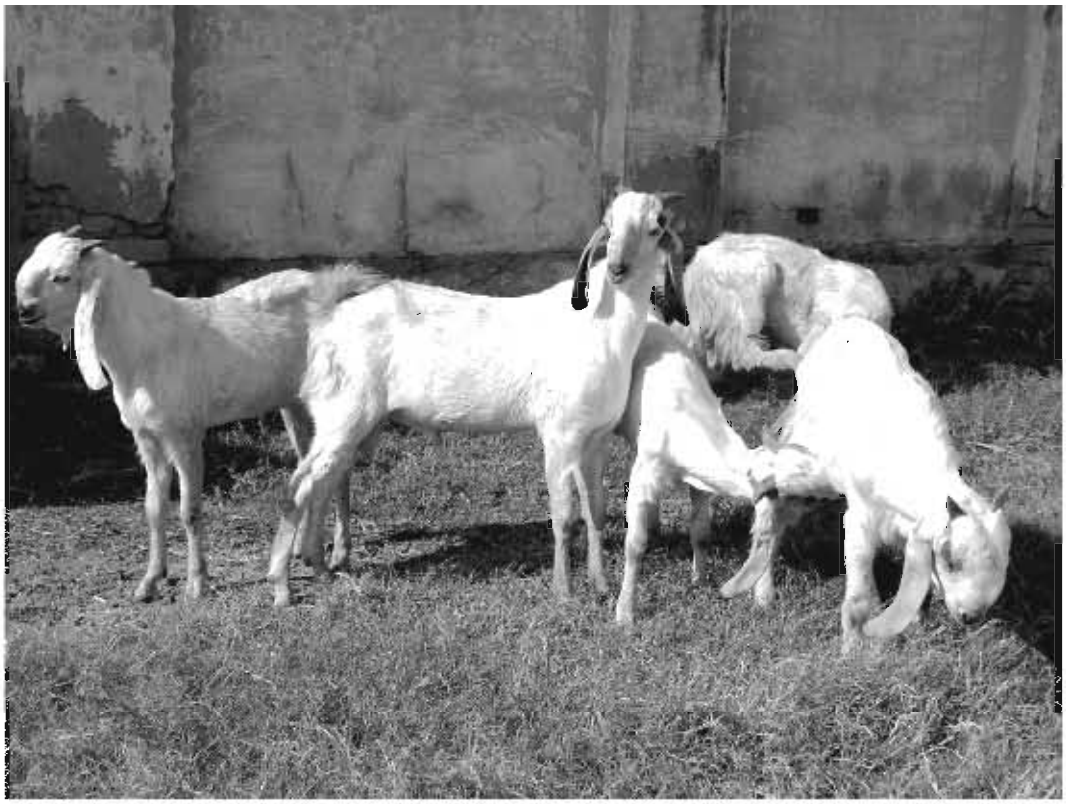

# बकरियों का पोषण

बकरी को भी अन्य जुगाली करने वाले पशुओं (गाय, भैंस, भेड़) की तरह पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है (सारिणी 1)। मुख्य पोषक तत्व निम्न है :–

1. प्रोटीन, 2. कार्बोहाइड्रेट्स, 3. वसा, 4. विटामिन्स, 5. खनिज लवण।

1. **प्रोटीन** :– शरीर के रख–रखाव के अलावा प्रोटीन शरीर की बढ़वार में काम आती है। बढ़ते हुए बच्चों तथा दूध देने वाली बकरियों दोनों को ही प्रोटीन की आवश्यकता होती है। बकरियां यह प्रोटीन हरे एवं सूखे चारे, पेड़ों और झाड़ियों की हरी पत्तियों तथा दाने विशेषकर खली से प्राप्त करती हैं (सारणी 2)। दलहनी फसलों के चारे में प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है जैसे बरसीम, रिजका, लोबिया इत्यादि। इसी तरह बबूल, बेर, छौंकरा की पत्तियों में भी प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है। हरे चारे की फसल को सही समय पर सुखाने पर भी बकरी को खिलाया जा सकता है, जिसे 'हे' कहते हैं। भूसा तो सिर्फ पेट भरने के लिए होता है। इसमें पाच्य प्रोटीन तो नाममात्र का होता है। इसी तरह दाने के मिश्रण में खली तथा दाल की चूरी ही दो ऐसे अवयव हैं, जिनमें कि प्रोटीन की मात्रा काफी होती है। मूंगफली की खल में क्रूड प्रोटीन करीब 45 से 50 प्रतिशत होता है जबकि तिल की खली में 30 से 35 प्रतिशत तथा चूनी में 15 प्रतिशत के आस–पास क्रूड प्रोटीन होता है।
2. **कार्बोहाडड्रेट्स** :– ये ऊर्जा के मुख्य स्त्रोत हैं। ये दो प्रकार के होते हैं, एक तो रेशे वाले जिसमें कि सेल्यूलोज मुख्य है तथा दूसरे पानी में घुलनशील। सेल्यूलोज को जुगाली करने वाले पशु ही पचा सकते है। दूसरी तरह के कार्बोहाइड्रेट्स में स्टार्च मुख्य है जो कि दाने जैसे मक्का, जौ, गेहूँ, चावल या इससे बने पदार्थों में पाया जाता है। इसका बकरी के अलावा अन्य बिना जुगाली वाले पशुओं में भी महत्व है।
3. **वसा** :– बकरी के आहार में यह चारे तथा दाने के स्त्रोत से पूरा हो जाता है। इसका मुख्य काम है शरीर को कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रदान करना। दुधारू पशुओं में दुग्ध वसा का मुख्य भाग पशु आहार से ही आता है। आवश्यकता से अधिक वसा पशु उत्पादन के लिए अच्छा नहीं होता। यह मुख्य रूप से वयस्क पशु के लिए हानिकारक है। हालांकि बहुत कम हालात में ही वसा की मात्रा पशु आहार में ज्यादा होती है।
4. **विटामिन्स** :– बकरियों के लिए यह भी आवश्यक पोषक तत्व है। बकरी रूमनधारी पशु होने तथा इसके रूमन में सूक्ष्मजीवी होने से यह पशु विटामिन ए, डी तथा ई को छोड़कर अन्य सभी विटामिन जैसे बी काम्पलैक्स, सी तथा के को स्वयं शरीर में (रूमन) बनाने की क्षमता रखता है। अतः विटामिन के, सी तथा बी काम्पलैक्स अलग से देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु एक बात हमेशा ध्यान में रखी जाये कि तीन महीने से कम उम्र के बच्चों में रूमन के अन्दर सूक्ष्मजीवी प्रतिक्रिया भली–भाँति विकसित नहीं होती है। इसलिए इस आयु तक बच्चों को सारे विटामिन्स आहार में देने की आवश्यकता होती है। कैरोटीन जो कि विटामिन ए का प्रीकर्सर है, ज्यादातर ताजे हरे चारों में उपलब्ध होता है। विटामिन डी धूप में सुखाये हुए चारे में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कैल्शियम तथा फास्फोरस लवणों के भली–भाँति उपयोग के लिए विटामिन डी अत्यन्त आवश्यक है। विटामिन ई का मुख्य स्त्रोत हरे चारे हैं। दाने में जौ, मक्का, ज्वार इसके अच्छे स्त्रोत हैं। विटामिन के का मुख्य स्त्रोत हरा चारा है तथा इसके अलावा रूमन सूक्ष्मजीवी भी इसे बनाते हैं। विटामिन बी काम्प्लैक्स जैसे थाईमीन, नायेसीन, पाइरीडोक्सीन, पैन्टोथैनिक अम्ल, फोलेसीन, बायोटीन, कोलीन तथा बी–12 रूमन के अन्दर सूक्ष्मजीवी बनाते है। इसलिए अलग से हरे चारे में देने की आवश्यकता

नही होती है। विटामिन सी भी बकरी के शरीर (रूमन) में ही बनता है। इसे भी अलग से देने की आवश्यकता नहीं होती है।

5. **खनिज लवण** :– कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सल्फर, सोडियम, क्लोरीन, पोटेशियम, लोहा, तांबा, कोबाल्ट, जस्ता, आयोडीन, मैगनीज तथा सैलेनियम की भी आवश्यकता बकरी को होती है। इसके अलावा क्रोमियम, निकिल, वैनेडियम तथा टिन भी महत्वपूर्ण है।

हालांकि दाने और चारे दोनों में ही विभिन्न प्रकार के खनिज लवण पाये जाते हैं। परन्तु इनकी मात्रा पशु शरीर की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होती, इसलिए इनका अलग से देना अति आवश्यक है। ये मिनरल–मिक्चर के रूप में दिये जाते है। दाने में इनकी मात्रा 2 प्रतिशत के आसपास रहती है। जानवर की शारीरिक क्षमता, प्रजनन और उत्पादन के स्तर को बनाये रखने के लिए रोजाना इसका इस्तेमाल अच्छा माना गया है।

**पशु आहार में खनिज की कमी से उत्पन्न लक्षण** :– आहार में खनिजों की कमी से पशुओं में निम्नांकित मुख्य लक्षण उत्पन्न होते हैं :–

- भूख में कमी।
- शारीरिक भार, वृद्धि दर में कमी तथा प्रति इकाई वृद्धि हेतु अधिक पोषण की आवश्यकता।
- रिकेट्स, ऑस्टोमलेसिया तथा कमजोर अस्थियाँ।
- जोड़ों में अकड़न, पसली की हड्डियों पर गाँठें बनना, शरीर की अस्थि संधियों का टेढ़ा–मेढ़ा होना।
- घेंघा रोग, अस्वस्थ शरीर तथा बिना बाल के बच्चे पैदा होना।
- मादा पशु का नियमित रूप से ऋतुमति (गर्म) न होना।
- दुग्धोत्पादन में कमी।
- कमजोर या मरे हुए बच्चे पैदा होना।
- प्रौढ़ पशु का तीव्र गति से कमजोर होकर मर जाना।
- जीवन के प्रारम्भ के दिनों में ही रक्त की कमी के लक्षण उत्पन्न होने से मृत्यु होना।

## बकरी के बच्चों का पोषण प्रबन्धन

बकरी के बच्चों की वृद्धि विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इसमें से एक प्रमुख कारक पोषण प्रबंधन है। बच्चों को यदि वृद्धि के समय उचित पोषण दिया जाये तो उसका परिणाम आगे उनके वयस्क होने पर नर में प्रजनन के लिए तथा मादा में दूध, मांस इत्यादि के लिए उत्तम होता है। बच्चों की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक उचित आहार आवश्यक है। सामान्यतः सभी विटामिनस विभिन्न हरे चारों में पाये जाते हैं। खनिज लवण भी आहारों और चारों में पाये जाते है और इन्हें दाने के मिश्रण में मिलाया जाता है। बच्चों के लिए माँ का दूध जन्म से लेकर 3 महीने की आयु तक अति आवश्यक है। इस अवधि में बच्चों को क्रीप आहार, रसीले हरे चारे के साथ इच्छानुसार दिया जाता है। इस आयु पर बच्चे घास और चारे को खाना शुरू कर देते हैं।

**सारिणी 1 : बकरी के बच्चों के लिए पोषण (0–3 माह)**

| उम्र (दिनों में) | शारीरिक भार (कि.ग्रा.) | पोषण की संख्या | दूध | हरा चारा | क्रीप आहार |
|---|---|---|---|---|---|
| 0–7 | 1–3 | माँ के साथ | इच्छानुसार | – | – |
| 8–30 | 3–5 | 2–3 | 200–350 मि.ली. | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 31–60 | 5–7 | 2 | 300–400 मि.ली. | इच्छानुसार | 100–150 |
| 61–90 | 6–10 | 2 | 200 मि.ली. | इच्छानुसार | 150–200 |

3–12 महीने की आयु पर बच्चों को इच्छानुसार चारे के साथ दाने के मिश्रण की नियत मात्रा दी जाती है। इस आयु पर बच्चे रोमन्थ (रूमन) के सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा रेशे का पाचन प्रारम्भ कर देते हैं।

**सारिणी 2 : बढ़ती हुई बकरियों हेतु पोषण (3–12 माह)**

| उम्र (माह) | शारीरिक भार (कि.ग्रा.) | दाना मिश्रण (ग्राम) | | हरा चारा (कि.ग्रा.) | | सूखा चारा |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | छोटी नस्ल | बड़ी नस्ल | छोटी नस्ल | बड़ी नस्ल | |
| 3 | 6–10 | 150 | 200 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 4 | 7–11 | 200 | 250 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 5 | 8.5–12.5 | 225 | 275 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 6 | 10–14 | 250 | 300 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 7 | 11.5–15.5 | 275 | 325 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 8 | 13–17 | 300 | 350 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 9 | 14.5–19 | 300 | 350 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 10 | 16–21 | 300 | 350 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 11 | 17.5–23 | 300 | 350 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |
| 12 | 19–25 | 300 | 350 | इच्छानुसार | इच्छानुसार | इच्छानुसार |

बच्चों का क्रीप आहार ऊर्जा और प्रोटीन से परिपूर्ण होना चाहिए एवं रेशा बहुत कम मात्रा में होना चाहिए, क्योंकि इस आयु (0–3 माह) में बच्चों का रूमन रेशों के पाचन के लिए विकसित नहीं होता है।

**सारिणी 3 : क्रीप राशन (0–3 माह की आयु के लिए) का प्रतिशत संगठन**

| अवयव | मात्रा (ग्राम) |
|---|---|
| मक्का का दाना | 50 इसके साथ 25 ग्राम विटाब्लेंड प्रति क्विंटल मिश्रण में मिलाया जा सकता है। |
| मूँगफली की खल | 30 |
| गेहूँ की भूसी | 12 |
| मछली का चूरा | 5 |
| खनिज मिश्रण | 2 |
| साधारण नमक | 1 |

**सारिणी 4 : स्टार्टर (क्रीप) राशन (1–4.5 माह की आयु के लिए) का प्रतिशत संगठन**

| अवयव | राशन–1 | राशन–2 |
|---|---|---|
| मक्का | 12 | 0 |
| ज्वार | 0 | 5 |
| बाजरा | 10 | 0 |
| सरसों की खल | 0 | 10 |
| अलसी की खल | 11 | 10 |
| तिल की खल | 23 | 20 |
| अरहर की चुरी | 26 | 30 |
| चने की चुरी | 05 | 12 |
| गेहूँ की भूसी | 10 | 10 |
| खनिज मिश्रण | 2 | 2 |

| अवयव | राशन–1 | राशन–2 |
|---|---|---|
| साधारण नमक | 1 | 1 |
| क्रूड प्रोटीन | 18 | 20 |
| सम्पूर्ण पाचक तत्व | 70 | 65 |

बाजार में उपलब्धता के आधार पर उपरोक्त दोनों ही राशन (सारिणी–4) 1 से 4.5 माह के बच्चों को दिये जा सकते हैं। इन राशनों में उन अवयवों की मात्रा कम होती है, जो मुख्य रूप से अन्य दुधारू पशु–गाय व भैंस के लिये प्रयोग किये जाते हैं। बकरी के बच्चों में प्रति किलोग्राम वृद्धि के आधार पर दोनों ही राशन उपयोगी व सस्ते पाये गये हैं।

**सारिणी 5: मांस उत्पादन के लिए राशन का प्रतिशत संगठन (4–9.5 माह की आयु के लिए)**

| अवयव | राशन–1 | राशन–2 | राशन–3 |
|---|---|---|---|
| मक्का का दाना | 18 | 10 | 15 |
| धान की भूसी | 10 | 5 | –– |
| तिल की खली | 15 | 17 | –– |
| सरसों की खली | –– | 10 | 10 |
| बाजरा का दाना | 20 | –– | 10 |
| मूँगफली की खल | –– | –– | 20 |
| गेहूँ का चोकर | 5 | 25 | 17 |
| चने की चुरी | 8 | 18 | 15 |
| अरहर की चूरी | 9 | 12 | 10 |
| साधारण नमक | 1 | 1 | 1 |
| खनिज मिश्रण | 2 | 2 | 2 |
| क्रूड प्रोटीन | 15.5 | 18 | 18 |
| सम्पूर्ण पाचक तत्व | 75.0 | 65 | 70 |

अधिक मांस उत्पादन के उद्देश्य से उपरोक्त तीनों ही राशन बच्चों के लिए उपयोगी है। इस स्थिति में दाने–चारे का अनुपात (शुष्क पदार्थ के आधार पर) 40 : 60 प्रतिशत होना चाहिए, जिससे बच्चों में अधिकतम वृद्धि प्राप्त हो सके। हरी घास, बरसीम, रिजका, मक्का, जौ, जई, लोबिया, पेड़ों की पत्तियां आदि को हरे चारे के रूप में तथा अरहर, चना, जई तथा जौ आदि के भूसे की शुष्क चारे के रूप में 2 माह की उम्र के उपरान्त दिया जा सकता है। बच्चों में उचित वृद्धि दर के लिए शुष्क व हरे चारे का अनुपात (शुष्क पदार्थ के आधार पर) 2 : 1 का रखा जाना चाहिए जिससे उनकी उचित वृद्धि हो।

## पशु पोषण में खनिज लवण एवं विटामिन

(1) **खनिज तत्वों की आवश्यकता :–** पशुओं के शरीर में कई प्रकार के खनिज तत्व पाये जाते हैं। शरीर के विभिन्न प्रकार के ऊतकों में खनिज की मात्रा और अनुपात भिन्न–भिन्न होते हैं। वैसे तो शरीर में बहुत से खनिज तत्व पाये जाते हैं, परन्तु अभी प्रत्येक तत्व के शारीरिक क्रियाओं में महत्व पर अध्ययन हो चुका है, वे कैल्शियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, सेलेनियम, मोलिबिडनम, क्लोरीन, फ्लोरीन, मैग्नीशियम, लौह, सल्फर, आयोडीन, मैग्नीज, कॉपर, कोबाल्ट और जस्ता है। अल्प मात्रा में होने पर भी इन तत्वों का शारीरिक क्रियाओं में बड़ा महत्व है।

**(2) विटामिन** :– प्रकृति में कुछ ऐसे पदार्थ पाये जाते है जो अति सूक्ष्म मात्रा में पौधे, दूध, फल, ऊतक, जीवाणु, मोल्ड इत्यादि में मिलते हैं। ये पशु एवं मानव शरीर में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुये है।

**प्रमुख विटामिन्स का शरीर में कार्य तथा प्राप्ति स्थान**

| विटामिन | शारीरिक क्रिया में कार्य | प्राप्ति स्थान |
|---|---|---|
| (1) विटामिन ए | • यह नेत्र रोग में अत्यन्त लाभदायक है।<br>• इसकी कमी से रतौंधी रोग हो जाता है।<br>• बच्चों में इसकी कमी से जेरोफ्थैल्मिया रोग हो जाता है।<br>• इसकी कमी से शरीर की प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाती है।<br>• इसकी कमी से जनन शक्ति में कमी आ जाती है। | • हरि पत्तियाँ।<br>• गाजर।<br>• पीले रंग की मक्का।<br>• अण्डे का योक (पीला भाग)। |
| (1) विटामिन डी | • इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स रोग हो जाता है।<br>• दाँत कमजोर हो जाते हैं। | • यह प्रकृति में कम पाया जाता है।<br>• यह मछली के तेल, वसा युक्त अन्न में पाया जाता है। |
| (3) विटामिन ई | • इसकी कमी से प्रजनन शक्ति क्षीण हो जाती है। | • प्रकृति में प्रचूर मात्रा में पाया जाता है। |
| (4) विटामिन के | • इसकी कमी से रक्त का स्कन्दन नहीं होता है। | • यह अंकुरित पौधों, हरे पत्ते वाले साग–सब्जी जैसे–पालक, बन्दगोभी, फूलगोभी आदि में पाया जाता है। |
| (5) विटामिन बी | • इस विटामिन की कमी से पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है।<br>• इसकी कमी से स्नायु रोग हो जाता है।<br>• इसकी कमी से बेरी–बेरी नामक रोग हो जाता है। | • यह अन्न के भ्रूण में पाया जाता है। |
| (6) विटामिन बी2 | • इसकी कमी से शरीर का विकास रूक जाता है। | • यह हरी सब्जी में पाया जाता है। |
| (7) विटामिन बी12 | • इसकी कमी से रक्त–क्षीणता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा स्नायुतंत्र दुर्बल होने लगता है। | • यह अंडा, मांस, मछली, यकृत, गुर्दा, दूध में पाया जाता है। |
| (8) विटामिन सी | • इसकी कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है।<br>• दाँत व मसूड़े कमजोर हो जाते हैं।<br>• यह अस्थियों, दाँतों, रक्त कार्टिलेज स्थित कोशिका को बनाने में मदद करता है। | • नींबू, संतरा, मौसम्मी में अधिक पाया जाता है।<br>• फलों में आंवला इस विटामिन का सबसे अच्छा स्त्रोत है।<br>• ताजे दूध में यह विटामिन पाया जाता है। |

## दूध विकल्प

**महत्व**

- न्यूनतम दुग्ध उत्पादन एवं अत्यधिक शिशु जन्म दर की अवस्था में शिशु की मृत्यु दर, कम दुग्ध उपलब्धता एवं अनुपलब्धता के कारण काफी बढ़ जाती है। इस अवस्था में दुग्ध विकल्प का उपयोग करके शिशुओं की जीवन रक्षा की जा सकती है।
- मध्यम तथा अत्यधिक दुग्ध उत्पादन करने वाली मादाओं के लिए मां के दूध के स्थान पर दुग्ध विकल्प प्रयोग किया जा सकता है। अतः बाकी दूध मनुष्यों के प्रयोग में लिया जा सकता है।

**दुग्ध विकल्प का प्रतिशत संगठन (प्रोटीन 24 प्रतिशत)**

| अवयव | भाग | प्रोटीन | ऊर्जा (किलो कैलोरी) |
|---|---|---|---|
| सपरेटा दुग्ध चूर्ण | 47 | 16.44 | 168 |
| सोयाबीन चूर्ण | 9 | 3.92 | 39 |
| गेहूँ का आटा | 35 | 3.85 | 121 |
| नारियल तेल | 7 | 0.00 | 63 |
| खनिज मिश्रण | 2 | 0.00 | 0 |

इसके अतिरिक्त निम्न अवयव भी एक किलो दुग्ध विकल्प में मिलाकर दिये जायेंगे।

ब्यूटायरिक अम्ल 0.2 (मिली)

साइट्रिक अम्ल 2 ग्राम

प्रोबायोटिक्स 1.5 108 स्पोर्स प्रति किलोग्राम

उपरोक्त दुग्ध विकल्प चूर्ण को पुनः बनाने के लिए इसके 1 किलोग्राम चूर्ण में 1 लीटर गुनगुना पानी मिलायें तदोपरान्त इसको 200–350 मिली. प्रति पशु प्रतिदिन दें। इसकी मात्रा पशु के वजन के अनुसार घटायी–बढ़ायी जा सकती है।

**विवरण**

| दिन | दुग्ध विकल्प | दूध |
|---|---|---|
| 5–7 दिन तक | 10 प्रतिशत | 90 प्रतिशत |
| अगले 5–7 दिन तक | 25 प्रतिशत | 75 प्रतिशत |
| अगले 5–7 दिन तक | 50 प्रतिशत | 50 प्रतिशत |
| अगले 5–7 दिन तक | 75 प्रतिशत | 25 प्रतिशत |
| अगले 5–7 दिन तक | 90 प्रतिशत | 10 प्रतिशत |
| लगभग 90 दिन तक | 100 प्रतिशत | 0 प्रतिशत |

बच्चों को दुग्ध विकल्प तथा दूध ब्याने के 15–20 बाद शुरू करें।

**दुग्ध विकल्प को पिलाने के समय सावधानियाँ :**

1. दुग्ध विकल्प हल्के गर्म पानी 40° से.ग्रे. तापक्रम पर अच्छी तरह मिलाना चाहिए।
2. बकरी के बच्चों को पिलाने से करीब 10 मिनट पहले ही दुग्ध विकल्प को पानी में मिलाना चाहिए।
3. बोतल एवं निपल को दूध विकल्प पिलाने के बाद अच्छी तरह साफ करके रखना चाहिए।
4. बकरी के बच्चों को दूग्ध विकल्प 2 बार ही पिलाना चाहिए।

# बकरियों के लिए चारा फसल–चक्र

बकरियों को संतुलित आहार की आवश्यकता स्वस्थ दिशा में जीवन निर्वाह, जनन, मांस, दुग्ध तथा रेशा उत्पादन हेतु पड़ती है। बकरियों के आहार के मुख्य घटक चारा, दाना व अन्य पदार्थ (खनिज मिश्रण) होते हैं।

चारे को मुख्यतः दलहन व अदलहन में बाँटा जा सकता है। दलहन चारे को सूखे चारे जैसे चना, मटर, अरहर, मूँग, उर्द का भूसा तथा हरे चारे जैसे बरसीम, रिजका, मटर, सैंजी, लोबिया, ग्वार में बाँटते हैं। अदलहन सूखे चारे जैसे–गेंहूँ, जो, जई का भूसा, कड़बी (ज्वार, बाजरा, मक्का) सूखी घासें (हे) तथा अदलहन हरे चारे के अंतर्गत ज्वार, मक्का, बाजरा, मकचरी, नैपियर, सूडान घास, परा घास, जई प्रमुख रूप से आते हैं।

इन चारों के अलावा बकरी के लिए चारागाह घासें, वृक्षों की पत्तियाँ, झाड़ियाँ, कुछ फलियाँ व फल उत्तम चारे साबित हुए हैं। देश की जलवायु में भिन्नता के कारण सभी प्रकार के चारे की फसलें समान क्षेत्रों में समान उत्पादन नहीं रखती है। अतः अधिक उत्पादन प्राप्ति के लिए विभिन्न क्षेत्रों के लिए निम्नलिखित चारे की फसलें प्रमाणित की गयी है–

| | क्षेत्र | असिंचित दशा | सिंचित दशा |
|---|---|---|---|
| (1) | शुष्क | बाजरा, ज्वार, मोठ, ग्वार | ज्वार, रिजका, बरसीम, सैंजी, जई। |
| (2) | अर्ध शुष्क | ज्वार, बाजरा, लोबिया | ज्वार, मक्का, बाजरा, लोबिया, मकचरी, रिजका, बरसीम, नैपियर, जई, सूडान। |
| (3) | पठार | मक्का, ज्वार, लोबिया, मकचरी | ज्वार, जई, सूडान घास, बरसीम, नैपीयर, सटेरिया घास। |
| (4) | आर्द्र | सनई, मूँग, उर्द | गुनिया घास, नैपियर, पारा घास, जई। |
| (5) | पहाड़ी | जई, टेम्प्रेट घास, रिजका | |

वर्तमान परिस्थितियों में हमारे देश में पशुधन के लिए चारा उत्पादन हेतु कृषिगत भूमि कम हैं। इसमें खाद्यानों को या तो उगाया नहीं जा सकता है या फिर उगाना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं है। ऐसी भूमि के लिए चारे की विभिन्न फसलों की संस्तुति निम्न प्रकार की गयी है।

| | समस्याग्रस्त भूमियाँ | चारे की फसलें |
|---|---|---|
| 1. | अम्लीय भूमि | लोबिया, जई, दीनानाथ घास, मक्का, गिनीघास, नैपियर, बाजरा, हाईब्रिड। |
| 2. | चूनायुक्त भूमि | ज्वार, बाजरा, नैपियर, बाजरा हाईब्रिड, मकचरी, सेम। |
| 3. | लवणीय भूमि | सूडान घास, ज्वार, मकचरी, जई, नैपियर बाजरा, हाइब्रिड रिजका, सैंजी, पारा घास, रोडस घास, दशरथ घास। |
| 4. | क्षारीय भूमि | बरसीम, ज्वार, जई, सैंजी, नैपियर बाजरा हाईब्रिड, करनाल घास, दशरथ घास, ब्लूपैनिक घास, रोडस घास। |
| 5. | दलदली भूमि | मकचरी, ब्लूपैनिक घास। |
| 6. | रेतीली भूमि | अंजन घास, ज्वार, पारा घास, ब्लूपैनिक घास, सेवन घास। |
| 7. | बीहड़ | दीनानाथ घास, गिनी घास, स्टाइलोहामाट, घबूल घास, सूबबूल फुलकरा घास। |

## बकरियों के लिए वर्ष भर हरे चारे की उपलब्धि के लिए सघन फसल-चक्र

**बहुकटाई मिश्रण फसल चक्र :**

(1) ज्वार + बाजरा + सूडान + मकचरी + लोबिया– बरसीम + जई।
(2) मक्का + लोबिया– ज्वार + लोबिया + मकचरी – बरसीम।
(3) ज्वार + बाजरा + लोबिया– ग्वार + ज्वार – जई।

**अन्य एक वर्षीय सघन फसल–चक्र**

(1) मक्का – ज्वार / बाजरा – बरसीम।
(2) मक्का + लोबिया– रिजका।
(3) मक्का + लोबिया– नैपियर + रिजका।
(4) मक्का + लोबिया– ज्वार / बाजरा – बरसीम।
(5) मक्का + लोबिया– बाजरा – जई।
(6) मक्का + लोबिया– मक्का + लोबिया (मई) – मक्का + लोबिया + मकचरी – जई।
(7) मक्का + लोबिया– ज्वार + ग्वार – जई।
(8) लोबिया– मकचरी + लोबिया + बरसीम।
(9) सूडान घास + लोबिया – मक्का + लोबिया – जई (2 काट)।
(10) नैपियर + लोबिया (गर्मी)+ बरसीम (सर्दी) (8–10 काट)।
(11) बाजरा + ग्वार (2 काट) – वार्षिक रिजका (6 काट)।
(12) ज्वार + लोबिया– ज्वार + लोबिया – बरसीम + जई।
(13) मक्का + लोबिया– बाजरा – मक्का + लोबिया – जई।
(14) मक्का + लोबिया– एम.पी.चरी + लोबिया (2 काट) – जई + मटर।

इन चारे वाली फसलों के अलावा कुछ वृक्ष बकरियों को अच्छी गुणवत्ता का चारा प्रदान करते हैं। इनसे चारा प्राप्त होने का समय निम्नलिखित है :–

| वृक्ष का नाम | पत्ती चारा | फली चारा |
|---|---|---|
| देशी बबूल | मई–फरवरी | मई–जून |
| अगस्त | जुलाई–नवम्बर | – |
| अरडू | मई–मार्च | – |
| देशी सिरिस | अप्रैल–अक्टूबर | – |
| गूलर | दिसम्बर–अगस्त | मार्च–जुलाई |
| सुबबूल | जुलाई–दिसम्बर | – |
| अंजन | अप्रैल–जनवरी | – |
| खेजरी | पूरे वर्ष | जून–अगस्त |

इनके अलावा जंगली जलेबी, पीपल, नीम, बेर भी बकरियों को अच्छा चारा उपलब्ध कराते हैं। चारे की फसलों से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखें :–

- चारे की फसलों का चुनाव भूमि एवं जलवायु के अनुसार करें।
- सिंचित क्षेत्रों में वर्षा प्रारम्भ होने से 15–20 दिन पूर्व पलेवा करके बुवाई करें।
- दलहन व अदलहन फसलों का मिश्रण बोना चाहिए।
- फसल को काटने से 4–5 दिन पहले सिंचाई करे ताकि चारे की अगली फसल शीघ्र बोई जा सके।

- कई काट वाली फसलों को भूमि से इतनी ऊँचाई से काटे जिससे कि उनकी पुनर्वृद्धि में कोई बाधा न आए।
- चारे की अधिकतर फसलें वृद्धि की लम्बी अवस्था रखती है तो पोषक तत्वों की काफी मात्रा भूमि से लेती है। अतः भूमि की उर्वरता बनाए रखें।

**चारे की फसलो को बोने व काटने का समय**

| फसल | बुवाई का समय | चारा प्राप्त होने का समय |
|---|---|---|
| 1–ज्वार | मार्च–मध्य अगस्त | 60 दिन बुवाई के बाद मई–अक्टूबर बहुकाट :–<br>1–60 दिन बुवाई के बाद।<br>2, 3–40–50 दिन पहली कटाई के बाद। |
| 2– मक्का | मार्च–अक्टूबर | 60–65 दिन बुवाई के बाद मई–दिसम्बर संयुक्त व संकुल<br>90–115 दिन बुवाई के बाद। |
| 3– बाजरा | मार्च–अगस्त | 45 दिन बुवाई के बाद मध्य अप्रैल–मध्य अक्टूबर । |
| 4–मकचरी | मार्च–जुलाई | 80 दिन बुवाई के बाद मध्य मई–अक्टूबर।<br>दाने–मध्य नवम्बर। |
| 5– नैपियर | फरवरी–नवम्बर | पहली – 3 महीने बुवाई के बाद रोप 40–45 दिन के अंतर पर (1 मी. ऊँचाई)। |
| 6–पारा घास | फरवरी–मार्च व जून–जुलाई | पहली –70 दिन बुवाई के बाद, बाद की कटाई एक–2 माह के अंतर। |
| 7– सूडान घास | फरवरी–मार्च व जून–जुलाई | पहली – 45 दिन बुवाई के बाद, बाद की कटाई 21–28 दिन (10–15 काट)। |
| 8– लोबिया | मार्च–सितम्बर (पहला सप्ताह) | 60–70 दिन बुवाई के बाद (मई–दिसम्बर) फली बनने पर दाने 90–100 दिन बुवाई के बाद। |
| 9– ग्वार | मध्य मार्च–अगस्त | 75 दिन बुवाई के बाद (जून–नवम्बर)। |
| 10–बरसीम | सितम्बर–मध्य अक्टूबर | पहली 50–60 दिन बुवाई के बाद शेष 25–30 दिन के अंतर। |
| 11–रिजका | मध्य सितम्बर–अक्टूबर | पहली 60–70 दिन बुवाई के बाद अन्य 25–30 दिन अंतराल (10–15 प्रतिशत फूल)। |
| 12–जई | अक्टूबर–दिसम्बर | पहला –60 दिन बुवाई के बाद (50 प्रतिशत फूल),<br>दूसरा– 90–95 दिन बुवाई के बाद,<br>तीसरा – बीज पकने पर (मई)। |
| 13–मटर | मध्य अक्टूबर–मध्य नवम्बर | 60–70 दिन बुवाई के बाद। |

# बकरियों के बच्चों का रख-रखाव

हमारे देश में बकरी पालन प्राचीन समय से होता आ रहा है। परन्तु बकरी पालन से अभी तक अपेक्षित लाभ नहीं हो रहा है। इसका एक मुख्य कारण बकरी के बच्चों के पालन की तरफ समुचित ध्यान न दिया जाना है। बच्चों में विकास कम होने के साथ–साथ मृत्यु दर भी अधिक होती है। वैज्ञानिक तकनीक अपनाकर बकरी के बच्चों में मृत्यु दर कम करना तथा शारीरिक विकास की दर बढ़ाकर बकरी पालन से अधिक लाभ अर्जित करना सम्भव है। बकरी के बच्चों को पालने के तीन मुख्य वैज्ञानिक पहलू हैं:–

1. बकरी व बच्चों का आहार प्रबंधन
2. बीमारियों से बचाव
3. आवासीय व्यवस्था

1. **बकरी का आहार प्रबंध** :– बच्चों के शारीरिक विकास पर उनकी माँ को गर्भ एवं दूध देने की अवस्था में दिये जाने वाले आहार का विशेष प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था के पाँचवें माह में जब बच्चों का अधिकतम विकास होता है, ग्याभिन बकरियों को प्रतिदिन लगभग 55 ग्राम अतिरिक्त पाच्य प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार दुग्धकाल में प्रति किलो दूध उत्पादन पर लगभग 50 ग्राम अतिरिक्त पाच्य प्रोटीन चाहिए। पाच्य प्रोटीन की इस बढ़ी हुई आवश्यकता की पूर्ति उनके आहार में दाने की मात्रा बढ़ाकर की जा सकती है। दाने में पाच्य प्रोटीन 10–12 तथा कुल पाच्य पदार्थों की मात्रा 65–70 प्रतिशत निर्धारित करते हैं। मोटे तौर पर अनाजों में लगभग 8–10, खलियों में 30–35 तथा चोकर में 10–12 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन पाई जाती है।

   दाने के अतिरिक्त प्रति बकरी प्रतिदिन लगभग 1 किलोग्राम हरा चारा एवं इच्छानुसार सूखा चारा देना चाहिए। दाने की प्रति बकरी प्रतिदिन मात्रा निम्न दर से निर्धारित करते हैं:–

   - शरीर रक्षा हेतु 200–300 ग्राम
   - गर्भ रक्षा हेतु 300–400 ग्राम
   - दुग्ध उत्पादन हेतु 400–500 ग्राम प्रति किलो दूध उत्पादन की दर से।

   **(1) जन्म से तीन माह की आयु के बच्चों का आहार तथा अन्य प्रबंध** :– जन्म के तुरन्त बाद सबसे पहला कार्य बच्चे के शरीर पर लगी हुई झिल्ली को हटाकर साफ एवं मुलायम कपड़े से उसकी सफाई करना है। विशेषरूप से नथुनों के पास की सफाई पर यह सुनिश्चित करें कि बच्चा ठीक से सांस ले रहा है। सांस में कठिनाई की स्थिति में बच्चे को जमीन पर लिटाकर उसकी आगे की टांगों को पकड़कर धीरे–धीरे ऊपर–नीचे करें। इसके बाद उसके नाल को शरीर से जुड़े हुए स्थान से लगभग 5 से.मी. नीचे साफ धागे से कसकर बांध दें। अब बंधे हुए स्थान से लगभग 2 से. मी. नीचे से किसी तेज धार वाले चाकू या नये ब्लेड से काट दें। काटने के बाद कटे हुए भाग को टिन्चर आयोडीन से उपचारित करें।

   **(2) खीस पिलाना** :– जन्म के बाद बच्चों को खींस पिलाना बहुत आवश्यक है। खींस में साधारण दूध की तुलना में प्रोटीन की मात्रा लगभग चार गुना अधिक होती है। खींस में पाये जाने वाले प्रोटीन में उपस्थित इम्यूनोग्लोब्युलिन, बच्चे के रक्त में समायोजित होकर उसमें बीमारियों से प्रतिरोधकता प्रदान करती है। खींस में इम्यूनोग्लोब्युलिन की मात्रा धीरे–धीरे घटती जाती है, जो साधारण दूध में प्राय खत्म हो जाती है। इसलिए खींस पिलाना बहुत ही आवश्यक है। जन्म के पश्चात् धीरे–

धीरे बच्चों की आँतों की अंदर की सतह वाली झिल्ली सख्त हो जाती है, जिससे इम्यूनोग्लोब्युलिन की रक्त में समायोजन की दर भी कम होती जाती है। जो जन्म के 24 घण्टे बाद प्रायः शून्य हो जाती है। अतः जन्म के बाद जितना जल्द संभव हो बच्चे को खींस पिलायें। खींस प्रतिरोधक–क्षमता प्रदान करने के साथ–साथ बच्चों को बाह्य वातावरण के कुप्रभाव से रक्षा करता है।

बच्चे को खींस की मात्रा उसके शारीरिक भार के लगभग 1/10 भाग के बराबर दी जानी चाहिए। खींस की कुल आवश्यक मात्रा को दिन में 3–4 बार, बराबर अंतराल पर पिलायें। प्रथम बार खींस बच्चे के जन्म से आधा घण्टा के अंदर ही पिला देना चाहिए। जैसे–जैसे समय बढ़ता जायेगा, खींस का महत्व कम होता जायेगा।

बकरी से खींस न मिलने पर निम्नलिखित चीजों को अच्छी तरह मिलाकर घोल तैयार कर दिन में 3–4 बार पिलाना चाहिए।

| | |
|---|---|
| मुर्गी का अण्डा | एक |
| गुनगुना पानी | 200 मि.ली. |
| सामान्य दूध | 300 मि.ली. |
| अंडी का तेल या तरल पैराफीन | 10 मि.ली. |
| विटामिन "ए" | 10,000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई |

**(3) दूध पिलाना** :– बकरी के बच्चों के लिए दूध की मात्रा उनके शरीर भार के हिसाब से निम्न प्रकार निर्धारित कर लेनी चाहिए :–

| आयु | दूध की मात्रा |
|---|---|
| प्रथम सप्ताह | शरीर भार का 10 प्रतिशत |
| 1–2 सप्ताह | शरीर भार का 10–15 प्रतिशत |
| 2–4 सप्ताह | शरीर भार का 12 प्रतिशत |
| 4–8 सप्ताह | शरीर भार का 7 प्रतिशत |
| 8–12 सप्ताह | शरीर भार का 3 प्रतिशत |

**(4) चारा–दाना प्रबंधन** :– बच्चे लगभग 15 दिन की आयु से चारा–दाना खाना शुरू कर देते हैं। शुरू में उन्हें पेड़–पौधों की हरी मुलायम पत्तियाँ तथा इच्छानुसार दाना खाने को दें। दाने–चारे की मात्रा धीरे–धीरे आवश्यकतानुसार बढ़ाते रहें। बच्चों को चरने भेजने की दशा में सुबह 2 घंटे के लिए इच्छानुसार दाना खिलाने से अच्छे परिणाम प्राप्त हुये हैं। दाने में लगभग 14–16 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन तथा 70–75 प्रतिशत कुल पाच्य पदार्थ निर्धारित करें। हरे चारे, जिनमें पानी की मात्रा अधिक हो, कम दें। जन्म से तीन माह तक आयु वाले बच्चों के लिए दूध तथा दाने की दैनिक आवश्यकता निम्न तालिका में दी हुई है :

| आयु | दूध की मात्रा | दाने की मात्रा (ग्राम) |
|---|---|---|
| | **अपेक्षित शारीरिक वृद्धि – 150 ग्राम प्रतिदिन** | |
| जन्म से 15 दिन | शरीर भार का 10–15 प्रतिशत | – |
| 15 दिन से 1 माह | शरीर भार का 12 प्रतिशत | 70 |
| 1–2 माह | शरीर भार का 7 प्रतिशत | 100 |
| 2–3 माह | शरीर भार का 3 प्रतिशत | 200 |

| आयु | दूध की मात्रा | दाने की मात्रा (ग्राम) |
|---|---|---|
| | **अपेक्षित शारीरिक वृद्धि – 100 ग्राम प्रतिदिन** | |
| जन्म से 15 दिन | शरीर भार का 10–15 प्रतिशत | – |
| 15 दिन से 1 माह | शरीर भार का 12 प्रतिशत | 50 |
| 1–2 माह | शरीर भार का 7 प्रतिशत | 70 |
| 2–3 माह | शरीर भार का 3 प्रतिशत | 120 |
| | **अपेक्षित शारीरिक वृद्धि – 50 ग्राम प्रतिदिन** | |
| जन्म से 15 दिन | शरीर भार का 10–15 प्रतिशत | – |
| 15 दिन से 1 माह | शरीर भार का 12 प्रतिशत | 20 |
| 1–2 माह | शरीर भार का 7 प्रतिशत | 40 |
| 2–3 माह | शरीर भार का 3 प्रतिशत | 70 |

**(5) तीन से 12 माह की आयु तक प्रबंधन** :– तीन माह की आयु से आगे नर एवं मादा बच्चों को अलग–अलग रखकर पालें। तीन माह की आयु पर उन्हें दूध पिलाना बंद कर आवश्यकतानुसार दाना–चारा दें। इन्हें लगभग 3–4 किलोग्राम शुष्क पदार्थ प्रति 100 किलोग्राम शारीरिक भार के हिसाब से आवश्यकता होगी। शारीरिक भार के 15 प्रतिशत के बराबर दाना खिलाने से उनके शरीर की रक्षा एवं वृद्धि हेतु आवश्यक खाद्य तत्वों की पूर्ति हो जाती है। दाने के अतिरिक्त 250–500 ग्राम हरा चारा तथा इच्छानुसार सूखा चारा खिलाने को दें।

2. **बीमारियों से बचाव** :– निमोनिया, दस्त, आंत्रशोध तथा काक्सीडिओसिस, बकरी के बच्चों में होने वाले प्रमुख रोग हैं। निमोनिया से बचाव के लिए बच्चों के रखने के स्थान को साफ–सुथरा एवं सूखा रखना अति आवश्यक है। फर्श पर सूखी, मुलायम घास की बिछावन प्रयोग करें। कम जगह में आवश्यकता से अधिक बच्चे रखने से भी निमोनिया हो सकता है।

छोटे बच्चों में दस्त होने के कई कारण हैं। शुरू की अवस्था में आवश्यकता से अधिक दूध पिलाने से दस्त हो जाते है। आंत्रशोध तथा ई. कोलाई से उत्पन्न रोगों के लक्षण के रूप में भी दस्त हो सकते हैं। दस्त न हों, इसके लिए दूध की सही मात्रा दें एवं रहने के स्थान तथा दाने–चारे की स्वच्छता बनाये रखें।

कोक्सीडिओसिस का प्रमुख लक्षण दस्त है। इससे बचाव के लिए इस बात का ध्यान रखा जाये कि बच्चे न तो मिट्टी खायें और न दूषित चारा–दाना। इसके लिए शुरू की अवस्था में फर्श पर सूखी मुलायम घास की बिछावन प्रयोग करें।

इसके अतिरिक्त बच्चों में यदा–कदा एक्थाइमा तथा एन्ट्रोटोक्सीमिया नामक रोग भी हो जाते हैं। बच्चों के किसी भी रोग से ग्रसित होने की दशा में तुरन्त स्थानीय पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।

3 **आवास–प्रबंधन** :– आवास के उचित प्रबंध के लिए निम्न बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है:–

- आवास साफ, स्वच्छ, हवादार एवं उचित रोशनदान युक्त हों।
- जन्म के पश्चात् लगभग एक सप्ताह तक बच्चों को उनकी मां के साथ रखें। अलग–अलग बकरियों के लिए 1.2 से 1.5 वर्ग मीटर आकार के बाड़े बनायें। इस प्रकार के प्रबंध से बच्चों को समय से आवश्यकतानुसार दूध पिलाने में सुविधा रहती है साथ ही बकरी एवं बच्चा एक साथ रहते हुए एक दूसरे को पहचान जाते है।
- आवास को सूखा रखने के लिए समय–समय पर फर्श की मिट्टी की गुड़ाई कर उसमें चूना एवं बी.

एच.सी. का प्रयोग करते रहें। अगर फर्श पक्का है तो उसकी ठीक से सफाई कर सूखने दें तथा घास की बिछावन प्रयोग करें।

- आवास में पर्याप्त स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए। विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों की आवासीय स्थान की आवश्यकता निम्न प्रकार हैः–

| आयु | प्रति बच्चा स्थान |
|---|---|
| जन्म से तीन माह | 0.2 से 0.5 वर्ग मीटर |
| 3–6 माह | 0.5 से 0.7 वर्ग मीटर |
| 6–12 माह | 0.7 से 1.0 वर्ग मीटर |

खुला हुआ स्थान उपरोक्त स्थान का लगभग दुगुना होना चाहिए, जिसमें चारा–दाना खिलाने के उपकरण रखे जा सकें। इस स्थान में जानवर भी अच्छी तरह से घूम–फिर सकते हैं। समय–समय पर बढ़े हुए खुरों को काटते रहें अन्यथा जानवर में लँगड़ापन हो जाने की सम्भावना रहती है।

# बकरी फार्म पर होने वाले प्रमुख प्रबन्धन कार्य

अधिकतर बकरियाँ समाज के कमजोर एवं निम्न वर्ग द्वारा पाली जाती रही है, लेकिन वर्तमान में बकरी पालन व्यावसायिक स्तर पर अपनाया जा रहा है। अधिकतर फार्म शहर के आसपास है, जहाँ भूमि की कमी है। इसलिये बकरी पालन हेतु सघन एवं अर्द्धसघन विधियों द्वारा पालन व्यवस्था की वैज्ञानिक जानकारी अति आवश्यक है।

1. **गर्मी की जाँच व प्रजनन** :– बकरी उत्पादन के लिये बकरियों के गर्मी में आने की जाँच अति आवश्यक है। ऋतुकाल में आने की जाँच सुबह, सांय की जानी चाहिए। गर्मी में आने की दशा में बकरी की योनि में सूजन आ जाती है और उससे तरल पदार्थ (म्यूकस) का स्राव होता है। बकरी के खाने–पीने में कमी आ जाती है और वे एक दूसरे पर चढ़ती हैं। ऐसी दशा में गर्मी में आयी बकरी का नम्बर नोट करके अन्य बकरियों से अलग कर प्राकृतिक या कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा गर्भाधान करवा देना चाहिए।
2. **बकरी के स्वास्थ्य की देखभाल** :– बकरी पालक को बकरियों के स्वास्थ्य की जांच करनी चाहिए। स्वस्थ बकरी फुर्तीली दिखाई देती है परन्तु बीमार बकरी में निम्न लक्षण देखने को मिलते हैं :–
   - बीमार जानवर अन्य जानवरों से अलग बैठ जाता है।
   - बीमार बकरी के पास जाने पर वह बकरी पालक की तरफ ध्यान नहीं देती है।
   - बकरी घूमना–फिरना बन्द कर देती है तथा खाना–पीना भी कम या बन्द हो जाता है।
   - नाक बहना तथा दस्त होना भी पाया जाता है।
3. **दुग्ध निकालना व बच्चों को दुग्ध पिलाना** :– बकरी का दूध दो बार (प्रातः एवं सांय) निकालना चाहिए और बच्चों को भी दो बार दूध पिलाना चाहिए। बचे हुए दूध को साफ बर्तनों में रखें। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये निम्न बातें ध्यान में रखना आवश्यक है:–
   - दूध दुहने का स्थान साफ–सुथरा होना चाहिए।
   - बकरी के थनों को साफ गुनगुने पानी से धोकर दूध निकालना चाहिए।
   - दूध निकालने वाले के हाथ पोटेशियम परमेंगनेट के घोल या साबुन से धुले होना चाहिए।
   - दूध वाले बर्तन अच्छी तरह से धुले व साफ होने चाहिए।
   - बकरी के थनों को लाल दवा (पोटेशियम परमेंगनेट) के घोल से धो लेना चाहिए।
   - दूध देने वाली बकरियों को नर (बकरों) से दूर रखें, जिससे उनसे आने वाली दुर्गन्ध दूध में न आ सके।
4. **बकरी एवं बच्चों का आहार** :– इसका विस्तृत विवरण बकरियों के बच्चों को रख–रखाव नामक अध्याय में दिया गया है।
5. **समयानुसार कार्य** :–
   (i) **खुरों का काटना** :– बकरियों के खुरों में अनावश्यक वृद्धि रोकने हेतु खुरों को समय से काटना अति आवश्यक है। यह बकरियों में लंगड़ापन एवं खुरपका रोग रोकने में सहायक होता है। खुर काटने के लिये बकरी को अच्छी तरह से खड़ा या लिटाकर, खुर काटने के तेजधार वाले चाकू से अनावश्यक खुरों को काट देना चाहिए तथा रेती या रेगमाल से खुरों को धीरे–धीरे रगड़ना चाहिए जिससे खुरों में समानता आ जाये। इसके बाद तारपीन के तेल को रूई से कटे हुए खुर पर लगा देना चाहिए। खुर काटते समय यह सावधानी रखी जाये कि खुर न तो अधिक ऊपर से कटे और

न ही अधिक गहरे, क्योंकि अधिक नीचे से काटने पर खुरों में घाव या अन्य प्रकार के रोग हो सकते हैं, जिससे बकरियों में लंगड़ापन आ जाता है। खुरो को अधिक ऊपर से काटे जाने से भी बकरियों में लगड़ापन आ जाता है।

(ii) **सींग रहित करना** :– बकरियों के बच्चों को सींग रहित जन्म के 15 से 20 दिन के अंदर कर सकते है। इसके लिये सींग निकालने की जगह के आसपास अच्छी तरह से बालों को काटें तथा गर्म लोहे की छड़ लगभग 10 सेकेण्ड तक गर्म करके अंकुरित सींग की ऊपरी सतह पर तब तक रखें तब तक वह सुनहरे कत्थई रंग की न हो जाये।

(iii) **बकरियों की ब्रुश द्वारा सफाई करना** :– बकरियों में ब्रुश करने से उनके बालों की गंदगी साफ हो जाती है तथा टूटे हुए बाल निकल जाते हैं। बालों में चमक तथा सुन्दरता आ जाती है। ब्रुश करने से बाह्य परजीवियों से बचाव हो जाता है। यह शरीर के रक्त संचार में भी अति उपयोगी है। बकरी को साफ–सुथरे स्थान पर खड़ा करके ब्रुश को बकरी के मुँह की ओर से पीठ की तरफ धीरे–धीरे खींचकर चलाना चाहिए। बालों के गुच्छे अथवा अन्य प्रकार की गंदगी को कैंची द्वारा काटकर अलग कर देना चाहिए।

(iv) **बकरों का बधियाकरण** :– बकरों को खस्सी या बधिया करने से अनावश्यक प्रजनन से रोका जा सकता है। खस्सी बकरों को मादाओं के साथ–साथ भी रखा जा सकता है। इसकी निम्न विधियाँ प्रचलन में है:–

**(क) बर्डिजो विधि** :– इस विधि में बर्डिजो कास्ट्रेटर यन्त्र से शुक्राणु वाहक नलियों को दबा दिया जाता है। इसके लिये बकरों को साफ जगह पर लिटाकर बकरे के अण्डकोषों को हाथ से पकड़कर थोड़ा बाहर की ओर खींच लेते हैं और उसकी दोनों शुक्राणु वाहक नलिकाओं को बर्डिजो कास्ट्रेटर यंत्र से दबा देते है। इस स्थान पर स्प्रिट अथवा टिंचर आयोडीन का घोल लगा देना चाहिए। कुछ दिनों तक बकरों को निगरानी में रखना चाहिए।

**(ख) रबड़ के छल्ले के द्वारा** :– बकरे को पकड़कर किसी स्वच्छ जगह पर लिटाकर रबड़ के छल्लें को इलास्ट्रेटर की सहायता से शुक्राणु वाहक नलिकाओं पर चढ़ा देते है। इससे अण्डकोषों को रक्त पहुँचाने वाली नलिकाओं में रक्त का प्रवाह बंद हो जाता है। कुछ समय उपरान्त अण्डकोष पूर्णरूप से सूख जाते हैं तथा चढ़ाया हुआ रबड़ का छल्ला अपने आप नीचे गिर जाता है।

**(ग) शल्यक्रिया द्वारा** :– इस विधि में बकरे की शुक्राणुवाहक नलिकाओं को अण्डकोषों से बाहर निकालकर काट देते हैं जिससे बकरे के वीर्य में शुक्राणु नहीं आते हैं। इसके लिये शल्य क्रिया की आवश्यकता होती है, जिसे पशु चिकित्सक द्वारा कराना चाहिए। शल्य क्रिया बरसात में नहीं करवानी चाहिए।

(v) **पहचान चिन्ह** :– बकरियों में पहचान चिन्ह लगाना उचित कार्य रिकॉर्ड के लिए अति आवश्यक है। बकरियों को एक प्रकार का चिन्ह दिया जाना नितान्त आवश्यक है। इससे उनकी खिलाई के साथ–साथ बीमा जैसी योजनाओं में सुविधा रहती है। पहचान चिन्हित करने की निम्न विधियाँ होती हैं :–

**(क) गोदना** :– गोदने वाली मशीन द्वारा इच्छित संख्या अथवा अन्य प्रकार का निशान बकरों व बकरियों के कानो में डाल दिया जाता है, जो कि अधिक समय तक पढ़ा जा सकता है। गोदने से पहले इच्छित संख्या को किसी कागज या गत्ते पर लगाकर देख लेना चाहिए ताकि अनइच्छित नम्बर बकरियों में न पड़े। जानवरों को साफ–सुथरे स्थान पर निशान लगा देना चाहिए।

**(ख) टैगिंग**:– जन्म के बाद रस्सी में प्लास्टिक अथवा धातु का टुकड़ा लेकर उसके ऊपर इच्छित नम्बरों को रोगन (पेंट) द्वारा लिखकर बच्चे के गले में डाल दिया जाता है। यह विधि थोड़े समय के लिये उपयोगी है। अधिक समय के लिये कानों में खाली धातु के बने टैग लेकर उसमें इच्छित नम्बर डाई द्वारा बना लिये जाते हैं। इनको प्लास से पकड़कर जहाँ रक्त वाहिका न हो, उस जगह एक साथ दबा देते हैं। इसको लगाने से पहले कान को अच्छी तरह से स्प्रिट द्वारा साफ कर लेना चाहिए एवं लगाने के बाद टिंचर आयोडीन इस स्थान पर लगा देनी चाहिए जिससे जख्म होने की सम्भावना को रोका जा सके।

**(ग) कानों में कट लगाकर चिन्हित करना** :– इस विधि के अंतर्गत कान के किनारों को इस प्रकार से काटा जाता है, कि इस बकरे या बकरी की उत्पादकता, प्रजनन एवं अन्य प्रकार की बातों का ज्ञान हो सकें। इस विधि के अंतर्गत कान को अच्छी तरह स्प्रिट या अन्य ऐन्टीसेप्टिक घोल से साफ करके किनारों पर शष्ट आकार का निशान तथा बीच में शष्ट आकार का निशान कट द्वारा लगा दिया जाता है।

**(घ) रंगो द्वारा चिन्हित करना** :– इस विधि के अंतर्गत थोड़े समय के लिये एक प्रकार के रंग द्वारा बकरियों को चिन्हित किया जाता है। चिन्हित करने के लिये अधिकतर साधारण रंग का उपयोग किया जाता है। अधिक समय के लिए पिकरिक एसिड या सिल्वर नाइट्रेट का उपयोग करना चाहिए।

(vi) **डिपिंग** :– बाह्य परजीवियों से बचाव हेतु समयानुसार पशुओं को बाह्य परजीवीनाशक घोल द्वारा नहलाना चाहिए जिससे जूं, किलनी आदि से बचाव हो सके। बाह्य परजीवी नाशक दवाईयाँ अधिकतर विषैली होती हैं। इनको प्रयोग करने से पूर्व, प्रयोग करते समय तथा बाद में कुछ सावधानियों की जरूरत होती है। डिपिंग करने से पूर्व पशुओं को पानी पिलायें तथा सभी की एक साथ डिपिंग करायें। डिपिंग के बाद बाड़े को चूने के छिड़काव व फिनायल द्वारा विसंक्रामक करना चाहिए।

(vii) **बाड़े व उपकरणों को विसंक्रामित करना** :– बकरियों को रोगाणुओं से बचाव करने के लिए बाड़े एवं उपकरणों की सफाई अति आवश्यक है। उपकरणों को प्रयोग करने के तुरन्त बाद गर्म साबुन के घोल में अच्छी तरह धोकर तथा पुनः गर्म पानी में धोकर किसी स्वच्छ कपड़े द्वारा पौंछकर स्वच्छ स्थान पर रख देना चाहिए। बाड़े से संबंधित नालियों में गन्दे पानी की निकासी हेतु उस बाड़े से दूर एक गड्ढे में जाने देना चाहिए तथा गड्ढे को समय–समय पर मच्छर रहित करने के लिए मिट्टी के तेल का प्रयोग करना चाहिए। कॉकरोंच एवं अन्य परजीवियों को नष्ट करने हेतु परजीवी नाशक दवाइयों का छिड़काव समय–समय पर करते रहना चाहिए। अगर फर्श कच्चा है तो उसकी सतह को खुरचकर उसकी जगह नयी मिट्टी डाल देनी चाहिए। सर्दियों के समय बकरी के बच्चों को जमीन की नमी से बचाने हेतु सूखी घास अथवा अन्य सूखे बिछावन तीन दिन के अंतराल से डालते रहना चाहिए। बच्चों को प्रत्येक 20 दिन बाद एक बाड़े से दूसरे बाड़े में बदलना चाहिए तथा बाड़े में चूने का छिड़काव अवश्य करते रहना चाहिए।

(viii) **अन्य कार्य** :– बकरी के बच्चों को ताजा पानी सुबह–सांय पिलाना चाहिए। वयस्क बकरियों को पानी पिलाने में यह अच्छा रहेगा कि जहाँ से होकर बकरी बाहर चरने के लिए जाती है, वहीं पर पानी की नाँद या हौदी बनाई जाय जिससे बकरी पानी पीकर चरने जाये। अगर बकरी चरने नहीं जाती तो पानी पिलाने हेतु बाड़े के समीप ही पानी की व्यवस्था की जाये। चारे खिलाने की नाँद को चारा डालने से पहले और खराब चारा निकालने के तुरन्त बाद अच्छी तरह से साफ करें। बच्चों के पानी के बर्तन रोजाना साफ किये जायें। यदि पानी की हौदी सीमेंट की बनी है तो उसकी समय–समय पर चूने के द्वारा पुताई की जाये जिससे जल रोगाणुओं रहित हो जाये। बकरी प्रक्षेत्र के मुख्य द्वार पर पशुओं के खुरों के उपचार हेतु विसंक्रामक घोल का नियमित उपयोग करते रहना चाहिए।

# बकरी उत्पादन और प्रजनन

पशु उत्पादन में जनन एक आवश्यक शारीरिक क्रिया है। बकरी पालन को सफल बनाने में नियमित पुनरोत्पादन तथा जनन क्षमता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसकी समुचित जानकारी के अभाव में बकरियों की उत्पादन क्षमता में अपेक्षित सुधार सम्भव नहीं है। बकरी पालन व्यवसाय को सफल बनाने के लिये आवश्यक है किः–

1. बकरी कम उम्र में जनन योग्य हो जाये।
2. बकरी प्रति ब्याँत अधिक बच्चे दे।
3. बकरी ब्याने के बाद जल्दी पुनः गर्भधारण कर ले।
4. बकरी के जीवनकाल में अधिकाधिक बच्चे पैदा हों।

जनन का आरम्भ बकरियों में शारीरिक रूप से सक्षम (लैंगिक परिपक्वता) होने के बाद ही होता है। यह नस्ल, जन्म के समय भार, पोषण स्तर तथा मौसम से प्रभावित होता है। भारतीय नस्ल की बकरियों के प्रमुख जनन संबंधी अभिलक्षण को सारणी–2 में दर्शाया गया है। जनन क्षमता उम्र के साथ बढ़ती है। मादा बकरी 7–8 वर्ष की आयु तथा नर बकरा 5–6 वर्ष तक अच्छी जनन क्षमता रखते है। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बकरी जनन के निम्न बिन्दुओं पर वैज्ञानिक जानकारी परमावश्यक है।

1. **नर का योगदान** :– इस तथ्य से सभी पशुपालक भलीभाँति परिचित होंगे कि नर (बकरे) का योगदान सम्पूर्ण उत्पादन का आधा भाग होता है। बकरी उत्पादन का स्तर बढ़ाने के लिये यह बात हमेशा ध्यान में रखें कि अधिक उत्पादन क्षमता तथा वर्णित नस्ल की बकरियां पाली जायें। अतः गर्भाधान के लिए उत्तम नस्ल के बीजू बकरे का चयन आवश्यक है।

   **प्रजनन हेतु उत्तम बकरें की विशेषतायें** :–

   - बकरा मजबूत हो तथा उसके शरीर की बनावट एवं आकृति आकर्षक हो।
   - सिर एवं गर्दन शरीर के अनुपातिक हो।
   - जिस नस्ल का बकरा है, उस नस्ल के सभी गुण होने चाहिए।
   - पसलियों की गहराई अधिक होनी चाहिए।
   - टांगे मजबूत हों तथा एक ही स्थान पर हों।
   - बकरे की माँ अधिक दूध देने वाली हो।
   - बकरा स्वस्थ एवं तन्दुरूस्त हो।
   - बकरे में पुरूषत्व हो एवं फुर्तीला हो।
   - बकरा ऐसे माँ–बाप की संतति हो जिनमें कभी भी अंवाछनीय लक्षणों की अभिव्यक्ति नहीं हुई हो।
   - अंडकोष पूर्ण विकसित एवं समान आकार के हों।

2. बकरे का चयन बकरी पालन के उद्देश्य (दूध, मांस) को ध्यान में रखकर करना चाहिए। मांस उत्पादन के लिये वे नस्लें (बारबरी, ब्लैक बंगाल, आसाम हिल, गंजाब इत्यादि) जो जल्दी व्यस्क होने वाली तथा जिनकी अधिक वृद्धि दर हो, अच्छी रहती हैं। इसी तरह दूध उत्पादन के लिये मुख्यतः जमुनापारी, बीटल, जखराना और सिरोही नस्ल उत्तम रहती हैं। गर्भाधान के लिये बकरे को अधिक वृद्धिदर वाले बच्चों में से छाँटना चाहिए और उसकी माँ की दुग्ध उत्पादन क्षमता भी अधिक होनी चाहिए। नर देखने में स्वस्थ, चुस्त और फुर्तीला हो। उसकी टाँगें मजबूत और पसलियों की गहराई अधिक हो। ऐसे नर के दोनों अण्डकोष पूर्ण

विकसित व समान आकार के हों और जननेन्द्रियों व पैंरों में कोई विकार न हो। बकरे के माता–पिता की उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखकर किया गया चयन गर्भाधान की दृष्टि से हमेशा फायदेमंद होता है। बकरे का चयन नस्ल के अनुसार कम उम्र (6–12 माह) में करके आवश्यक पोषण और नियमित प्रशिक्षण प्रारम्भ कर देना चाहिए। नर को मादा से अलग रखें। बकरों को प्रतिदिन 5–6 घण्टे चारागाह में भेजना चाहिये तथा बाड़ों में मौसम की उपलब्धतानुसार हरा चारा, पेड़ों की पत्तियाँ, संतुलित आहार (दाना) और स्वच्छ पानी भी उपलब्ध करायें। आमतौर पर नर को 6 माह की उम्र के बाद सुबह–शाम मदकाल (गर्मी) में आई बकरियों के साथ आधा घंटा रखकर समागम का अवसर देना चाहिए। प्रारम्भिक दिनों में तो अधिकांश नर, मादा में रूचि न दिखाकर उनसे दूर भागते हैं, परन्तु नियमित अवसर प्रशिक्षण जारी रखने पर वह कुछ ही समय में मादाओं से कामेच्छा प्रकट करने लगते हैं। आगे आने वाले दिनों में वह मादा बकरियों से पूर्ण समागम करने लगते हैं। इससे पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होने के बाद इन्हीं बारबरी, ब्लैक बंगाल, जमुनापारी, बीटल एवं जखराना नस्ल के बकरे क्रमशः 8–10, 7–8, 12–15, 12–13 और 11–12 माह में पहली बार वीर्य देना आरम्भ कर देते हैं। प्रजनन काल में प्रयोग किये जा रहे प्रत्येक बकरे की खुराक (दाना) 200–250 ग्राम प्रति बकरा प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ा देनी चाहिए। कृत्रिम गर्भाधान में एक बार एक बकरे से प्राप्त वीर्य को तनुकृत करके लगभग 10–15 बकरियों को ग्याभिन कराया जा सकता है। इस प्रकार एक उत्तम नस्ल का स्वस्थ और परिपक्व बकरा एक प्रजनन काल में 200–250 बकरियों को कृत्रिम गर्भाधान विधि से ग्याभिन कर सकता है। इन पर हुये अनुसंधानों से पता चला है कि प्राकृतिक या तनुकृत तरल वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान कराने पर गर्भ दर में कोई ज्यादा अंतर नहीं आता है। (गर्भदर क्रमशः 60–70 प्रतिशत तथा 70–75 प्रतिशत)। एक बकरे को अधिकतम 5–6 प्रजनन कालों (ऋतुकाल) में प्रजनन के लिये प्रयोग करने के पश्चात् दूसरे उत्तम बकरे से बदल देने से झुंड की प्रजनन शक्ति में गिरावट नहीं आती और अन्तः प्रजनन की सम्भावना भी नहीं रहती हैं।

3. **मादा का योगदान** :– उत्तम मादा का चयन भी उतना आवश्यक है जितना कि नर का। बकरी का चयन उसकी उत्पादकता के आधार पर होता है।

**प्रजनन हेतु दुधारू बकरी की विशेषतायें** :–

- सिर लम्बा, पतला एवं सामान्यः आकृति हो।
- गर्दन लम्बी, पतली तथा कोमल त्वचा वाली हो।
- पीठ सीधी ,मजबूत तथा मांसल हो।
- पसलियाँ गहरी तथा चौड़ी हों, अंतिम पसली पीछे की ओर मुड़ी हुई हो।
- पुट्ठों के आगे के बड़े गड्ढे जानवर की अच्छी पाचन शक्ति के द्योतक हैं।
- पुट्ठा लम्बा हो तथा जिसकी ढाल कम हो।
- भारी अयन शरीर से अच्छी तरह जुड़ी हो। दुहने में नरम, लचीला तथा दुहने के बाद अच्छी तरह सिकुड़ने वाली हो।
- पिछले पैरों की जाघों की जोड़ सीधी हो, जो अयन को काँटों से बचा सके।
- थन लम्बे हों तथा दुहने में मुलायम हो।
- अयन की विस्तार आगे की ओर हो जिससे ठण्ड एवं काँटों से बचाव हो सके।
- जबड़े लम्बे तथा मजबूत हो तथा अगले पैर की हड्डी मजबूत हों।

4. मांस उत्पादन के लिये पाली जाने वाली बकरियां जैसे बारबरी, ब्लैक बंगाल, गंजाम, मालाबारी आदि सामान्यतः 12–15 माह में पहली बार मां बन जाती हैं। दूध उत्पादन के लिये प्रयुक्त बकरियां जैसे जमुनापारी, बीटल, जखराना, सिरोही आदि अपेक्षाकृत देरी (20–28 माह) से पहली बार बच्चा देती है। बकरी

पालन व्यवसाय के उद्देश्यानुसार बकरियों का चयन करके उनको मौसम की उपलब्धता के अनुसार हरा चारा, पेडों की पत्तियाँ, संतुलित दाना, पानी तथा चारागाह में रोजाना 4–5 घण्टें भेजना चाहिये।

5. हरे चारे में वृक्षों की पत्तियाँ तथा दहलनी फसलों का अधिकाधिक उपयोग करें। कमी वाले मौसम में जरूरत के हिसाब से हरा चारा भी पैदा करें। बकरियों को उनकी नस्ल के अनुसार उचित आयु (लैंगिक परिपक्वता) तथा वजन (प्रौढ़ वजन का 60–70 प्रतिशत) प्राप्त करने पर ही प्रजनन करायें। बकरियों का ऋतुमयी होना इस बात का संकेत है कि वह निकट भविष्य में गर्भधारण के योग्य हो जायेंगी। बकरियों में ऋतुकाल (मदकाल) में निम्न लक्षण पाये जाते हैं:–

- उत्तेजित होना तथा दाना–चारा कम खाना।
- दुधारू बकरियों में दूध की मात्रा में कमी।
- बार–बार पेशाब करना तथा पूँछ भी बार–बार तेजी से हिलाना।
- झुंड की दूसरी मादा बकरियों पर चढ़ना तथा बकरे को अपने ऊपर चढ़ने देना।
- मिमयाना व चौकन्ना हो जाना।
- बकरी की योनि का लाल होकर चिकनी व लसीली होना।

योनि मार्ग से थोड़ी मात्रा में पारदर्शी तोड़ (योनि–द्रव्य) गिरता है। योनि द्रव्य मदकाल के आरम्भ में कम व पतला, मध्यावस्था में अधिक व पारदर्शी और अन्त में गाढ़ा तथा सफेद होता जाता है। योनि द्रव्य की मात्रा बकरियों में अन्य बड़े पशुओं की अपेक्षा कम होती है। बकरी सामान्य अवस्था में 24–36 घण्टे तक मदकाल (गर्मी) में रहती है और इसी सीमित अवधि में गर्भाधान कराने पर गर्भधारण करती है। बकरियों में मदकाल का पता करने के लिये एक टीजर बकरे को 50–60 बकरियों के झुंड़ में सुबह–शाम रोजाना आधा घण्टे घुमायें। मदकाल में आई बकरियों को मदकाल (गर्मी) में आने के 10–12 घण्टे बाद पहली बार ग्याभिन करायें। अगर बकरी 24 घण्टे बाद भी गर्मी के लक्षण प्रकट करती है तो दोबारा (10–12 घण्टे) के अंतराल पर भी ग्याभिन कराया जाये। गर्भ न ठहरने की स्थिति में बकरियां 19–21 दिन के अंतराल पर बार–बार गर्मी (मदकाल) में आती रहती हैं।

3. **गर्भ की समय से जाँच** :– ग्याभिन कराये गये प्रत्येक पशु का उचित समय पर गर्भ परीक्षण आवश्यक है। बकरियों में गर्भकाल की अवधि पांच माह (145–155 दिन) होती है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ग्याभिन कराये पशु में गर्भ ठहर ही जाये। गर्भ की समय से जांच न होने का दोहरा नुकसान है। एक तो समय से गर्भ निदान के अभाव में बकरियों को गर्भावस्था में उचित आहार नहीं मिल पाता है जिससे गर्भपात की सम्भावना बढ़ जाती है और कमजोर बच्चे पैदा होते हैं। दूसरे खाली (बगैर ग्याभिन) बकरियों के रखरखाव में अनावश्यक खर्चा होता है तथा समय रहते पुनः ग्याभिन न कराने से बकरी पालन में अपेक्षित लाभ नहीं होता है। बकरियों के गर्भ निदान के अनेकों तरीके हैं परन्तु उनमें से कुछ ही व्यवहारिक और उपयुक्त हैं। अतः बकरियों के गर्भ की श्रवणातीत विधि से गर्भाधान के 50–60 दिन बाद या फिर पेट का उभार देखकर (उदर विधि) 90 दिन के बाद पशु चिकित्सक से जाँच करा लेनी चाहिए।

4. **गर्भावस्था एवं प्रसव** :– गर्भावस्था में बकरियों की उचित देखभाल तथा संतुलित आहार आगे आने वाली संतति के भविष्य को निर्धारित करते हैं। बकरियों में प्रसव का समय अन्य पशुओं के समान ही महत्वपूर्ण है। जिन बकरियों का प्राकृतिक विधि से गर्भाधान कराया जाता है, उनमें प्रसव प्रक्रिया का ज्ञान और महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इसमें प्रसव की निश्चित तिथि की गणना नहीं की जा सकती है। ब्याने से एक सप्ताह पूर्व गर्भित बकरियों को हल्का, सुपाच्य दाना–चारा दिया जाये। उनके शरीर के पिछले भाग विशेषकर बाह्य जननांगों के आसपास के अनावश्यक बालों को काट दें। इन बकरियों को ब्याने के अनुमानित समय से 7–8 दिन पहले बाड़ों के आसपास ही चराया जाये या फिर बाड़ो में ही रखा जाये। ब्याने के 15 दिन पूर्व निम्न तैयारियाँ कर लेनी चाहिए :–

- ब्याने के लिये प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक बाड़े (4'X4') को अच्छी तरह से साफ करके सूखने दें। एक हफ्ते उपरान्त चूना डालकर उसमें सूखी घास का बिछौना दें। इन्हीं बाड़ों को प्रत्येक ब्याने वाली बकरी के लिये उपयोग मे लायें।
- ब्याने वाली प्रत्येक बकरी के बच्चों को इसी बाड़े में साथ रखने के लिये 21"X21"X21" आकार का लकड़ी का बक्सा रखें। इसमें भी सूखी घास या जूट की बोरी का बिछौना बनायें। जैसे–जैसे बकरी का प्रसव समय नजदीक आता है, उनमें निम्न परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है :–
- बकरी बेचैन होने लगती है।
- बकरी के अयन का आकार बढ़ जाता है। थनों में चमक एवं फूलापन दिखाई देता है। पहली बार ब्याने वाली अधिकांश बकरियों के थनों में दूध भी उतर आता है।
- बकरी के योनि मार्ग से लसलसा पीला एवं गाढ़ा स्त्राव ब्याने के कुछ दिन पूर्व से निकलना आरम्भ हो जाता है।
- बकरी झुंड से अलग एकान्त पंसद करती है ।
- ब्याने से कुछ घण्टे पूर्व बकरी बार–बार उठती–बैठती है और अनमनी रहती है।
- जैसे–जैसे ब्याने का समय नजदीक आता है प्रसव दर्द शुरू हो जाते हैं।

उपरोक्त लक्षण इसका संकेत है कि बकरी जल्द ही ब्याने वाली है। आमतौर पर प्रसव वेदना शुरू होने के 3–4 घण्टे में बकरी बच्चे को जन्म दे देती है। पहली बार ब्याने वाली बकरी ब्याने में अधिक से अधिक 5–6 घण्टे का समय लेती है। अधिकतर बकरियाँ लेटकर बच्चा देती है। प्रसव के समय बकरी को विचलित नहीं करना चाहिए। बकरी को स्वाभाविक जनन करने दें। सामान्य प्रसव में बच्चे के आगे के दोनों पैर और सिर पहले बाहर आते हैं। बाद में शरीर के अन्य अंग बाहर निकलते हैं। एक से अधिक बच्चे देने वाली बकरी में अन्य बच्चे भी इसी क्रम में योनिद्वार से बाहर निकलते हैं। बकरी का जेर, ब्याने से 3–6 घण्टे में निकल आता है। प्रसव में परेशानी की स्थिति में शीघ्र पशु चिकित्सक की सहायता लें।

5. **नवजात बच्चों की देखभाल** :– ब्याने के तुरन्त बाद बच्चों के मुँह तथा नाक के अन्दर–बाहर लगी म्यूकस की झिल्ली को हटाकर उन्हें सूखे, मुलायम कपड़े से पोंछ देना चाहिए। बच्चे को सूखी घास या जूट के बोरे पर रखकर बकरी को अपने बच्चे को चाटने दें। बच्चे की नाभि को साफ धारदार चाकू या ब्लेड से (टिंचर आयोडीन के घोल में डालकर) उसके आधार से 3–4 से.मी. ऊपर से काटकर धागे से बाँध दें। घाव को रोजाना 3–4 दिन तक इसी घोल से साफ करते रहें। नवजात बच्चों को अपनी मां का शुरू का दूध (खींस) जन्म के आधा से एक घण्टा के अंदर अवश्य पिलायें। यह उनमें रोग से बचाव के लिये प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है। जन्म के बाद बच्चों को एक सप्ताह तक अपनी मां के साथ लकड़ी के केज में रखना चाहिए। इससे बकरी तथा बच्चे आपस में एक–दूसरे की पहचान कर लेते हैं। इस अवधि में उन्हें 24 घण्टे में तीन बार मां का दूध पिलायें। तदोपरान्त 3 माह की उम्र तक उन्हें सुबह–शाम दूध पिलाना पर्याप्त होता है। तीसरे माह के अंत में जब बच्चे दाना, हरा चारा एवं मुलायम पत्तियाँ खाने लगें तो धीरे–धीरे दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए।

# बकरियों की जनन समस्यायें : रोकथाम और उपचार

भारतवर्ष में पशुपालन की दृष्टि से बकरियों का योगदान अत्यधिक महत्व रखता है। बकरी पालन से अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिये अच्छी नस्ल का चुनाव, खान–पान, रहन–सहन आदि के साथ–साथ जनन संबंधी विकारों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। बकरी पालकों को जनन एवं प्रसूतिजनक रोगों की समुचित जानकारी के अभाव में काफी आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी तो पशु जनन के योग्य ही नहीं रहता है। प्रसूति जनक रोगो के होने से जनशक्ति में कमी आने के साथ–साथ उनके दूध, मांस तथा अन्य उत्पादों के उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत आलोक में इन्हीं के निदान, उपचार व बचाव की जानकारी दी गयी है।

1. **बकरों में जनन समस्याएँ** : बकरों में जनन समस्याऐं मुख्यतः वृषण कोषों के असामान्य होने से संबंध रखती हैं। ऐसे बकरों से प्राप्त वीर्य अच्छा न होने से बकरी गर्भित होने में असमर्थ रहती है। इसलिये प्रत्येक बकरे को प्रजनन के काम में लाने से पहले इसके जनन अंगो की जांच तथा उसके द्वारा उत्पादित वीर्य का परीक्षण करना आवश्यक है। प्रत्येक बकरे के बारे में सभी जानकारियों का अभिलेख रखने से जनन संबंधी परेशानियों की चिकित्सा करने में मदद मिलती है। मुख्य जनन समस्याएँ निम्न हैः–

   **(1) वृषण कोषों का विकार** :– वृषण कोषों में विकार होने से बकरों को कभी–कभी बाँझपन का शिकार होना पड़ता है। क्षीणता, थैली में न उतरना एवं सूजन इत्यादि वृषण कोषों की मुख्य बीमारियाँ हैं। वृषण कोषों के विभिन्न समस्याओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कभी–कभी वृषण कोषों के आकार में कमी आ जाती है। सामान्य वृषण कोष की अपेक्षा क्षीण वृषण कोष ठोस और स्थिर होते हैं। परिणाम स्वरूप वृषण अपने स्थान पर दृढ़ता से स्थिर होने के कारण थैली में नही उतरते हैं। वृषण कोषों के विकारों से ग्रसित बकरों को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए। कभी–कभी कम उम्र के बकरों में ज्वर, विषैले पदार्थों का सेवन, पोषण में असंतुलन एवं विपरीत परिस्थितियों के कारण वृषण ग्रन्थि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें शुक्राणु के अपरिपक्व होने की वजह से उर्वरता शक्ति भी नष्ट हो जाती है। प्रारम्भिंक अवस्था में वृषण कोष सिकुड़े और कठोर होते हैं। प्रभावित बकरों के रहन–सहन और पालन–पोषण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए और इनसे प्राप्त वीर्य का प्रत्येक 2–3 महीने बाद परीक्षण करते रहना चाहिए। कभी–कभी एक या दोनों वृषण कोष अनुवंशिक कारणों से वृषण कोष थैली में उतरने से अक्षम होते हैं, जिससे उर्वरता में कमी या बाँझपन की समस्या होती है। इनका उपचार मुश्किल हैं, परन्तु कुछ मात्रा में गोनेडोट्रोफिन्स (हारमोन्स) देने से कुछ हद तक उपचार सम्भव है। ऐसे पशुओं का उपयोग प्रजनन के लिये कदापि नहीं करना चाहिए। वृषण कोष एवं अंडकोष में सूजन मुख्यतः जीवाणुओं के संक्रमण और वृषण कोष में घाव या चोट लगने से होती है। बकरों में इसे कभी–कभी देखा जाता है। उच्चताप, चारा कम खाना, थैली में सूजन, स्पर्श से गर्म और दर्द महसूस करना इस बीमारी के मुख्य लक्षण है। इस तरह के पशुओं को अलग करके उन्हें उपयुक्त मात्रा में एन्टीबायोटिक दवाओं से इलाज करना लाभप्रद होता है।

   **(2) संक्रमण** :– बकरों में जननांग अनेकों प्रकार के जीवाणुओं, विषाणुओं और क्लेमायडियल कारकों से संक्रमित होते हैं। ब्रुसेलोसिस का संक्रमण जीवाणुओं द्वारा होता है। इससे बकरे की उर्वरता में कमी आ जाती है। पशुओं में एन्टीबायोटिक को अपनाने के अच्छे परिणाम मिले हैं। साथ ही लक्षण के अनुसार उपचार करने और पूर्ण आराम देने से संक्रमण को रोका जा सकता है। उपचार द्वारा रोकथाम सम्भव न हो तो बीमार बकरे का समूह से अलग कर देना चाहिए, जिससे उसे स्वस्थ पशुओं के सम्पर्क में आने से रोका जा सके।

(3) **पोषण की कमियाँ** :– आहार में प्रोटीन, कॉपर, फास्फोरस, आयोडीन और विटामिन ए की कमी से लैंगिक परिपक्वता और कामुकता में कमी आ सकती है। वयस्क पशुओं की अपेक्षा कम उम्र वाले पशु पोषण कमियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते है। उर्वरता में कमी आने से बचाने के लिये पशुओं को विटामिन एवं खनिज युक्त संतुलित आहार खिलाना चाहिए।

(4) **रखरखाव में कमी** :– स्वस्थ एवं उचित उम्र के बकरों का चयन, संतुलित भोजन, वीर्य संग्रह का उचित प्रशिक्षण, क्रमबद्ध व्यायाम इत्यादि पर ध्यान देना चाहिए अन्यथा उर्वरता शक्ति में कमी आ जाती है।

2. **बकरियों में जनन एवं प्रसूतिजनक समस्यायें** :– मादा पशुओं का ऋतु मे न आना, बार–बार ऋतु में आना और गर्भित न होना, गर्भपात तथा मरे बच्चे को जन्म देना आदि प्रमुख जनन समस्याएँ है। इनके अलावा अनेक प्रसूति जनक रोग जैसे योनि या बच्चेदानी का बाहर आना, बच्चा बाहर न आना या फंसना तथा जैर न गिरना प्रमुख हैं। यह सभी पशु की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल असर डालतें हैं।

(1) **ऋतु में न आना** :– अधिक गर्मी, दुग्धकाल, वृद्धावस्था, कुपोषण और शरीर में हारमोन्स का सामान्य स्तर न होना इत्यादि कारणों से बकरियां ऋतु में नही आती हैं। किसी विशेष मौसम में ऋतु में आना बकरियों की नस्लों और वातावरण पर निर्भर करता है। जमुनापारी बकरियाँ वर्ष के सभी मौसमों में ऋतु में नहीं आती। आहार में ऊर्जा का स्तर कम होने से मद में आने की क्रिया विधि प्रभावित होती है। खनिजों में फास्फोरस, कॉपर, मैग्नीज, विटामिन ए और ई का स्तर ऋतु में आने को प्रभावित करता है। अधिक उम्र, हारमोन्स का असंतुलन और प्रबंध में बदलाव भी ऋतु में न आने के कारण हैं। ऋतु में न आने का उपचार करना इस बात पर निर्भर करता है कि किस कारण से बकरियाँ ऋतु में नही आयी। ऋतु में न आने पर निम्न उपचार प्रयोग में लाये जा सकते हैं :–

प्रजनन से पहले 20–30 दिन तक अधिक पोषक आहार देना चाहिए। इनको को–कू गोली दिन में एक बार पंद्रह दिन तक लगातार देनी चाहिए और उसके साथ–साथ टोनोफास्फोन 2–3 मि.ली. एक दिन छोड़कर 10 दिन तक देना चाहिए। फर्टिवेट की एक गोली प्रतिदिन के हिसाब से पाँच दिन तक खिलाना चाहिए। अगर इन उपचारों से फायदा न हो तो अंत में 0.15 मिलीग्राम एम.जी.ए. (प्रोजेस्ट्रोजन) प्रतिदिन 16 दिन तक आहार में मिलाकर खिलाना चाहिए।

(2) **बार–बार ऋतु में आना** :– इस अवस्था में उर्वर बकरे से प्रजनित करने पर भी बकरी बार–बार ऋतु में आ जाती है। इसके दो कारण हो सकते हैं। संचेतन में असफलता एवं प्रारम्भिक अवस्था में भ्रूण की मृत्यु। जनन अंगों की असमानता, जनन अंगों में संक्रामक बीमारियाँ, हारमोन्स में असंतुलन और पोषण में विभिन्न तत्वों की कमी, सम्भवतयः ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं। टोनोफासफोन एक दिन छोड़कर 5 दिनों तक देना फायदेमंद है। गर्भित कराने से एक घंटा पहले स्ट्रेप्टोमाइसिन अन्तः गर्भाशय विधि से देने से बीमारी ठीक हो जाती है। बार–बार ऋतु में आने के कारणों में यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रजनन हेतु कार्य में लाये जा रहे बकरों का स्वास्थ ठीक हो तथा उनके द्वारा प्राप्त वीर्य अच्छे किस्म का हो।

(3) **गर्भपात** :– बकरियों में गर्भपात संक्रामक कारणों, पोषक की कमी, दुर्घटना और रासायनिक तत्वों के सेवन आदि से होता है। जननांगों के संक्रामक रोगो में ब्रूसेलोसिस, विब्रियोसिस एवं क्लैमायडियोसिस प्रमुख हैं।

- ब्रूसेलोसिस बकरियों में गर्भपात का मुख्य कारण है। इसे वर्ष के सभी मौसमों में देखा जा सकता है। यह ब्रुसेल्ला मेलीटेन्सिस नामक जीवाणु द्वारा होता है। इस जीवाणु से प्रभावित बकरियों में गर्भपात गर्भावस्था के तीसरे अथवा चौथे महीने के मध्य होता है। गर्भपात के बाद कभी–कभी जेर रूकने की भी शिकायत पाई जाती है। गर्भपात के अलावा ब्रूसेलोसिस में प्रमुखतः जोड़ों में सूजन हो जाती है। गर्भपात से पीड़ित बकरियों को उपचार के लिये अलग रखना चाहिये। इसके सुनिश्चित निदान के लिये खून, अर्द्धविकसित बच्चा, झिल्ली इत्यादि प्रयोगशाला में भेजनी चाहिए। एन्टीबायोटिक चिकित्सा से इस समस्या का समाधान कुछ हद तक सम्भव है। अगर इसका उपचार सम्भव न हो तो प्रभावित पशुओं को प्रक्षेत्र से निकाल देना चाहिए, अन्यथा पूरे समूह के संक्रमित होने की सम्भावना रहती है।

- विब्रियोसिस बकरियों में बहुत कम होता है। इस बीमारी से ग्रसित बकरी में गर्भपात प्रायः गर्भधारण के अंतिम महीने में होता है। यह बीमारी दूषित पदार्थों को खाने से होती है।
- क्लैमायडियोसिस से बकरियों में गर्भपात होने के अलावा जोड़ों में सूजन आ जाती है। अधिकतर घटनाओं में जेर गर्भाशय में रूक जाती है, जिससे बाँझपन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। प्रतिरोधक औषधियाँ (टेट्रासायिक्लिन समूह) के प्रयोग से गर्भधारण के चौथे माह में क्लैमायडियेल संक्रमण को कम किया जा सकता है।
- पोषण का असंतुलन जैसे प्रोटीन की कमी, खनिज (फासफोरस, कॉपर, कोबाल्ट) की कमी भी गर्भपात के कारण है। अतः पशु आहार में प्रोटीन एवं खनिज लवणों की संतुलित मात्रा होनी चाहिए।
- दुर्घटना से बचाने के लिये गर्भावस्था के आखिरी दिनों में बकरियों को ऊँचे–नीचे क्षेत्र में ज्यादा दूर तक नहीं भेजना चाहिए, नहीं तो उनमें गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। गर्भपात के अंतिम दिनों में सघनता, आपसी लड़ाई या गड्डे आदि में गिर जाना, गर्भपात के कारण हो सकते हैं। अतः गर्भित बकरी के रख–रखाव के समय उपर्युक्त बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।
- रसायनों के जहरीले असर से गर्भपात हो जाता है। सायथियोन, आर्सेनिक आदि रसायनों से गर्भित बकरियों को नहलाने से भी कभी–कभी गर्भपात हो जाता है। गर्भावस्था के अंतिम माह में इन रसायनों का प्रयोग न करें।

4. **मरा बच्चा पैदा होना** :– कभी–कभी पूर्ण आयु का मैमना मृत अवस्था में पैदा होता है। संक्रमण, हारमोन्स का असंतुलन, कुपोषण एवं दुर्घटना इसके कारण हो सकते हैं।
5. **योनि या बच्चेदानी का बाहर आना** :– यह अन्य प्रसूतिजनक रोगों की अपेक्षा यह रोग बकरियों में कम देखा जाता है। सामान्यतः ब्याने से कुछ दिन पूर्व, ब्याते समय या ब्याने के कुछ घंटे बाद योनि, बच्चेदानी या दोनों शरीर से बाहर निकल आती है। इस रोग के कई कारण हैं जैसे– अधिक उम्र, गर्भावस्था में अच्छी खुराक की कमी व अनुवांशिक रोग। इस रोग से ग्रसित बकरियों के बाहर निकले हिस्से के लाल दवा के तनु घोल से साफ करके बाहर आये जेर को अलग कर देना चाहिए। तत्पश्चात् निकले भाग को योनि के अन्दर करने का प्रयास करना चाहिए। अन्दर न जाने की स्थिति में बाहर निकले भाग पर बर्फ या ठंडा पानी डालकर तथा एन्टीसेपटिक क्रीम लगाकर उसे अंदर कर देना चाहिए। बच्चेदानी का पूर्ण रूप से अपनी स्वाभाविक स्थिति में आने पर पशु की योनि के ऊपर से नीचे होने तक रस्सी की एक छींक लगा दें। जिससे बच्चेदानी पुनः वहाँ न आ पाये। पशु की एकान्त स्थान पर इस प्रकार बांधें जिससे उसके शरीर का पिछला भाग ऊपर तथा आगे वाला भाग नीचे रहे। पशु चिकित्सक की सलाह से पशु का उपचार रोग ठीक होने तक निरन्तर करायें।
6. **बच्चा बाहर न आना या फंसना** :– ब्याने के समय बकरी के बच्चे का बच्चेदानी से बाहर न आ पाना या फिर कठिनाई से बाहर निकलना ही बच्चा फसना कहलाता है। यह रोग मुख्यतः दो कारणों से होता है– एक बकरी की बच्चेदानी में विकार, बकरी का कमजोर व अधिक उम्र का होना है। दूसरा कारण बच्चे में उत्पन्न विकृति है। ऐसी स्थिति में बकरी पालकों को चाहिए कि असामान्य प्रसव लक्षण प्रकट होने की स्थिति में शीघ्र पशु चिकित्सक से सम्पर्क कर उपचार करायें, जिससे बच्चे को शीघ्र से शीघ्र निकाला जा सके। लापरवाही की स्थिति में यह बकरी व बच्चे दोनो के लिये घातक हो सकता है।
7. **जेर न गिरना** :– सामान्य प्रसव के उपरान्त बकरियों में जेर प्रायः 3–6 घंटें में बाहर निकल आती है। समय से जेर न निकलने के कई कारण होते हैं। इस रोग में जेर आंशिक या पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकलती है। ऐसी बकरी अनमनी होकर खाना–पीना छोड़ देती है तथा बुखार भी हो जाता है। जेर के कई दिन तक न निकलने पर बच्चेदानी में उसका सड़ना शुरू हो जाता है। बकरी की बच्चेदानी में संक्रमण से उसकी पुनः ग्याभन होने की सम्भावना भी कम होती जाती है। यदि जेर का अधिकांश भाग योनिद्वार से बाहर लटका दिखाई दे तो उसे साफ चिमटी से पकड़कर जमीन में बिना बुझे चूने के साथ गाढ़ दें। बकरी को जेर न खाने दें तथा पशु चिकित्सक की सलाह से बकरी के स्वस्थ होने तक उपचार करायें।

# जीवाणु जनित रोग

**बकरियों में जीवाणु जनित रोग मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं :-**

1. **न्यूमोनिया** :– श्वसन तंत्र में संक्रमण हो जाने पर फेफड़ों या श्वाँस नली में उत्पन्न सूजन को न्यूमोनिया कहते है। जिसमें श्वाँस दर में वृद्धि, अत्यधिक कफ तथा श्वसन ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है।

   **रोग के कारक** :– प्रतिकूल परिस्थितियों में थोड़े या अधिक समय रहने पर पशु की न्यूमोनिया रोग से ग्रसित होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

   - पाश्चुरैल्ला हीमोलिटिका टाइप I नाम जीवाणु का विषैला स्राव मुख्यतः भेड़ एवं बकरी के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है। यह जीवाणु साधारणतः श्वसन नली में पाया जाता है तथा जानवर के अधिक श्रम से थक जाने पर यह स्थापित होकर अपनी संख्या बढ़ाने लगता है, जिससे काफी विष जानवर के शरीर में आ जाता है जो प्राणघातक होता है।
   - क्लैमाईडिया जाति के जीवाणु भी यह रोग उत्पन्न करते हैं। यह जाति प्राणघातक नहीं होती। इससे संक्रमण होने पर जानवर काफी कमजोर हो जाता है।
   - माइकोप्लाज्मा जाति के जीवाणु इस रोग की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाते है। भारतवर्ष में माइकोप्लाज्मा कैपरी तथा माइकोप्लाज्मा एल.सी. मुख्य रूप से संक्रमण के लिये जिम्मेदार होते हैं।

   **रोग की उत्पत्ति** :– साधारणतः नासाछिद्र, श्वसन नली एवं फेफड़ों की दीवार, विषैले पदार्थों तथा संक्रमण करने वाले जीवाणुओं के प्रवेश को रोकते हैं। मुख्यतः संक्रमण वायु जनित होते हैं। वायु के द्वारा जीवाणु अंदर प्रवेश कर श्वसन तंत्र की अन्दरूनी सतह पर एकत्रित हो जाते है। यहां पर ये विभाजित होकर अपनी संख्या में वृद्धि करते है। शरीर में होने वाली प्रतिरक्षी क्रियायें या प्रतिक्रियायें इन जीवाणुओं से होने वाले नुकसान से जानवर को बचाती है। उपरोक्त क्रियाओं के अलावा वायु का नासाछिद्रों द्वारा छनना, छींकना, कफ (खाँसना) आदि कुछ और भी सुरक्षात्मक क्रियायें/प्रतिक्रियायें हैं जिससे जानवर संक्रमण से बचा रहता है।

   माइकोप्लाज्मा के संक्रमण में श्वसन नली में श्लेष्मिक परत लगभग गतिहीन हो जाती है। इस प्रकार से संक्रमण का तीव्र फैलाव होता है। यही प्रक्रिया विषाणु जनित न्यूमोनिया में भी होती है। बकरियों में खाँसने/धाँसने की एक महत्वपूर्ण क्रिया होती है, जिससे संक्रमित स्त्राव काफी मात्रा में बाहर निकल जाता है। इसके साथ ही फेफड़े के ऊतकों में एक खास प्रकार की कोशिकायें होती है जिन्हें "एल्वियोलर मेक्रोफेज" कहते है। यह कोशिकाएं लगभग सभी प्रकार के कीटाणुओं का भक्षण कर खत्म कर देती है, जिससे संक्रमण की संभावना काफी हद तक कम हो जाती है। न्यूमोनिया रोग का उत्पन्न होना, उसके कारण तथा कारक के प्रवेश पथ पर काफी हद तक निर्भर करता है। नासाछिद्रों से जीवाणुओं के प्रवेश करने पर पूरे श्वसन तंत्र में संक्रमण हो जाने पर जानवर के बार–बार खाँसने एवं कफ से संक्रमण छिटक–छिटक कर एक से दूसरे फिर तीसरे स्थान पर फेंफड़ों में फैलने लगता है। जीवाणुओं की स्थानीय गतिविधियों के कारण स्थानीय छोटे–छोटे फोड़े/घाव उत्पन्न होने शुरू हो जाते हैं। यही फोड़े धीरे–धीरे बड़े आकार के होकर संक्रमण की तीव्रता को काफी बढ़ा देते हैं और अन्ततः रोग उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार खून के रास्ते से भी फेफड़ों/श्वसन तन्त्र में संक्रमण स्थापित हो सकता है। विषाणु द्वारा उत्पन्न न्यूमोनिया रोग में मुख्यतः सूजन का अभाव रहता है, परन्तु फेफड़े की कोशिकाओं में पानी भर जाता है, जिससे पशु को आक्सीजन एवं कार्बन–डाईआक्साइड गैसों के आदान–प्रदान में मुश्किल आती है तथा साँस लेने में दिक्कत होने लगती है। जीवाणु जनित रोग में जीवाणुओं के विषैले स्राव के इकट्ठा हो जाने से स्थानीय कोशिकाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप कोशिकीय स्राव अधिकाधिक इकठ्ठा होने लगता है। जिससे

साँस लेने में घबराहट होने लगती है।

उपरोक्त सभी कारणों से बकरी के शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। पशु उथली साँस लेने लगता है। रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड बढ़ने से रक्त अम्लीयता बढ़ने लगती है जो कि मृत्यु का मुख्य कारण होती है।

**रोग का निदान :-**

(i) **बाह्य लक्षणों द्वारा** :– न्यूमोनिया के प्राथमिक लक्षण तेज एवं उथली सांस का लेना होता है। जब फेफड़ों का काफी हिस्सा निष्क्रिय होने लगता है, तब सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। खाँसी एवं मवाद युक्त कफ आने लगता है। श्वसन नली जब संक्रमित होती है तब दर्दयुक्त गीला कफ आता है। यह कफ श्वसन नली में ही उत्पन्न होता है। श्वसन नलिका में सूजन होने पर नासाछिद्रों में पानी युक्त स्त्राव भी गिरता रहता है। इन लक्षणों के अलावा तेज या हल्का बुखार (103.5–106.0 डिग्री. फा.) भूख न लगना, थकान, तेज धमनी प्रवाह, तेज चलने पर हाँफना, बेचैनी आदि प्रमुख लक्षण होते हैं।

जीवाणु जनित न्यूमोनिया होने पर जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न जहर फेफड़ों तथा शरीर के अन्य भागों में फैल जाता है, त्वचा रूखी एवं बाल शुष्क होने लगते हैं। श्वसन दर तथा हृदय गति सामान्य से अधिक हो जाती है। बाह्य व्यसन के समय घबराहट होना तथा पशु का मुँह खोलकर सांस लेना रोग की तीव्रता को दर्शाता है।

(ii) **खून की जाँच द्वारा** :– वीषाणु जनित न्यूमोनिया में खून की जांच करने पर श्वेत रूधिर कणिकाओं की संख्या में काफी कमी आ जाती है।

(iii) **कारकों का प्रथक्करण एवं पहचान** :– बकरी के संक्रमित स्राव से जीवाणु को प्रथक कर (कृत्रिम मीडिया पर उगाकर) उनकी पहचान करना।

(iv) **मृत जानवर के पोस्टमार्टम द्वारा** :– फेफड़ों (एक या दोनो) का संक्रमित होना, फेफड़ो में भारीपन, काटने पर पानी भरा रहना, अत्यधिक संक्रमण में फेफड़ों के प्रकोष्ठों का नष्ट होना, फेफड़ों का ठोस होना तथा श्वाँस नली में झागदार पस युक्त स्राव का इकट्ठा होना चाहिए।

**उपचार एवं बचाव** :– पशु के रोगी होने पर सर्वप्रथम उसे स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। इसके बाद रोगी पशु का उपचार करना चाहिए। इस बात का ध्यान रखें कि दवा उपयुक्त एवं सही मात्रा में दी जाये।

जीवाणु जनित न्यूमोनिया उपयुक्त दवा देने पर लगभग 24–28 घण्टें में ठीक होने लगता है। अधिक संक्रमित पशुओं को अधिक दिनों तक दवा की जरूरत पड़ती है। अधिक समय तक असर रखने वाले एन्टीबायोटिक्स अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं। प्रतिजैविक दवाइयों में इरिथ्रोमाइसिन, सेफेग्सिन तथा सिप्रोफ्लॉक्सासीन प्रमुख हैं।

माइकोप्लाज्मा एवं क्लैमाईडिया द्वारा उत्पन्न न्यूमोनिया में भी ऐन्टीबायोटिक्स द्वारा उपचार सम्भव है। उपरोक्त कारकों द्वारा जानवरों के संक्रमित होने के थोड़े ही समय बाद जीवाणुओं का संक्रमण अपना आधिपत्य जमा लेते हैं जिससे स्थिति और गम्भीर हो सकती है।

यदि यकायक काफी संख्या में पशु न्यूमोनिया रोग से पीड़ित होने लगें या दिन प्रतिदिन काफी संख्या में पशु बीमार होने लगें तो सभी पशुओं को सामुहिक रूप से भोजन या पीने के पानी में दवा देनी चाहिए। इस प्रकार के इलाज से बीमारी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही जड़े नहीं जमा पाती ओर जानवर मृत्यु से बच जाते है।

रोगी पशुओं को गर्म तथा स्वच्छ स्थान पर रखना चाहिए जहाँ स्वच्छ वायु का आवागमन हो। पशु को स्वच्छ पानी एवं हल्का भोजन देना चाहिए। जानवर के अधिक कमजोर हो जाने पर उसमें खून की नली द्वारा ग्लूकोज चढ़ाना चाहिए।

2. **जहरीले दस्त (एन्ट्रोटोक्सीमिया)** :– यह क्लोस्ट्रीडियम नामक जीवाणु द्वारा उत्पादित विशेष प्रकार का रोग है, जिसमें बीमार बकरी झुण्ड से अलग रहने लगती है तथा लड़खड़ा कर चलती है। उसे चक्कर आने लगते हैं ओर गिर जाती है तथा बाद में पीड़ित पशु की मृत्यु हो जाती है। शव परीक्षण के दौरान पेशाब

में ग्लूकोज पाया जाता है। आतों में सूजन तथा रक्त स्राव के निशान मिलते हैं। इसमें उपचार से विशेष लाभ नहीं होता है। यह बीमारी प्रायः वर्षा ऋतु में होती है, इसलिए ग्रीष्म ऋतु में इस बीमारी से बचने के लिए टीके लगावा लेने चाहिए।

3. **फुट रौट (खुरों का रोग)** :– इस रोग में बकरी के खुरों के बीच में छाले पड़ जाते हैं, जो बाद में फूटकर घाव बन जाते हैं। इससे बकरियों को चलने में कष्ट होता है और वह लँगड़ा कर चलती है। इसके उपचार के लिए बकरियों के खुरों को 1 प्रतिशत नीला थोथा (कॉपर सल्फेट) के घोल से धोकर, कोई भी एन्टीसेप्टिक क्रीम या लोशन लगा देना चाहिए तथा स्वस्थ बकरियों के खुरों को बरसात के दिनों में कम से कम एक बार नीला थोथा के पानी से धोने से इस रोग के होने की सम्भावना कम हो जाती है।

4. **संक्रामक गर्भपात (ब्रुसेलोसिस)** :– बकरियों में संक्रामक गर्भपात होने पर ग्याभिन बकरी गर्भ के अंतिम माह (4–5) में गर्भ गिरा देती है। यह रोग स्वस्थ पशुओं में रोगी बकरे के संसर्ग तथा दूषित आहार व पानी के द्वारा फैलता है। यह जननेन्द्रियों का रोग है, अतः इस रोग से ग्रसित बकरी के जननेन्द्रियों से निकलने वाले स्राव में इस रोग के जीवाणु प्रचुर मात्रा में होते हैं। गर्भपात के समय जीवाणु, जेर, स्राव व बच्चे के शरीर में होते हैं। ऐसी बकरी के दूध में भी इस रोग के जीवाणु आते हैं। रोगी बकरी का कच्चा दूध पीने से बकरी के बच्चों तथा मनुष्यों में भी यह रोग हो जाता है। अतः जिन बकरियों में ब्रुसेलोसिस रोग के जीवाणु हों, उनके दूध को पास्चुराईज या उबालकर प्रयोग में लाना चाहिए। इस रोग के जीवाणु का विशेष प्रभाव गर्भाशय की गाँठों पर होता है। जिसके कारण गर्भ और बकरी का संबंध कमजोर होता है और गर्भ समय से पहले (गर्भपात) गिर जाता है। अगर कभी बच्चा जिन्दा पैदा हुआ भी तो वह बहुत कमजोर होता है और उनकी मृत्यु दर अधिक होती है। रोगी बकरी में जेर भी काफी समय के बाद निकलती है। बकरे के अंडकोष में स्थाई रूप से सूजन आ जाती है। ये बकरे संसर्ग करते समय स्वस्थ बकरियों में रोग के जीवाणु पहुँचा देते हैं।

   रोग की रोकथाम हेतु प्रसव के समय पहले से ज्ञात रोगी बकरियों को स्वस्थ बकरियों से अलग कर देना चाहिए तथा प्रसव के उपरान्त निकलने वाले स्राव को एकत्र कर जला देना चाहिए।

5. **तिल्ली ज्वर** :– प्रायः यह रोग बकरियों में बहुत कम देखा गया है, परन्तु तिल्ली ज्वर वाले इलाकों में बकरियों को इस रोग से बचाने हेतु ऐन्थ्रैक्स स्पोर वैक्सीन के टीके साल में एक बार ग्रीष्म ऋतु के उपरान्त लगवा देना चाहिए।

6. **गलघोंटू (हीमोरेजिक सेप्टीसीमिया)** :– यह जुगाली करने वाले पशुओं का छूत रोग है। देश में प्रतिवर्ष 40,000 से अधिक जानवर इस रोग के शिकार हो जाते है और उनमें से अधिकांश की मृत्यु हो जाती है। यह बीमारी वर्षा ऋतु के आने पर शुरू होती है और कभी–कभी अत्यधिक भंयकर रूप से फैलती है।

**लक्षण** :– इस बीमारी के पशु के गले, गर्दन तथा जीभ पर सूजन आ जाती है। तेज बुखार का होना, आँख व नाक और मुँह से पानी बहना, पशु का चारा–पानी छोड़ देना व सुस्त हो जाना प्रारम्भिक लक्षण हैं। गले की सूजन 2–4 घण्टे उपरान्त बहुत तेजी से बढ़ती है तथा पशु को साँस लेने में अधिक परेशानी होती है। सांस के साथ–साथ घुर्र–घुर्र की आवाज आने लगती है तथा साथ–साथ बेचैनी अधिक बढ़ जाती है और 12–14 घण्टे के अंदर पशु मर जाता है।

**रोकथाम** :– विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रकोप को रोकने के लिए प्रतिवर्ष वर्षा आरम्भ होने से पूर्व सामूहिक रूप से पशुओं के टीके लगवाने चाहिए। यदि किसी क्षेत्र में गलघोंटू रोग फैला रहा है तो निम्न उपाय करने चाहिए :–

- रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए तथा रोगी पशु के प्रयोग में आने वाले बर्तनों को स्वस्थ पशुओं के प्रयोग मे न लायें।
- रोगी पशुओं के सम्पर्क में आये हुए पशुओं को 15–20 मि0ली0 एन्टीसीरम को अन्तःत्वचा (सबक्युटेनियस) विधि से देना चाहिए।

- स्वस्थ पशुओं में टीके लगवाने का तुरन्त प्रबंध करना चाहिए।
- जिस स्थान पर रोगी पशु बंधा हो उस जगह के फर्श, दीवारों आदि को 3 प्रतिशत कास्टिक सोडा या 5 प्रतिशत फिनाइल के घोल से साफ करना चाहिए। रोगी पशु के मल–मूत्र बिछावन आदि को चूने के साथ गड्ढे में डालकर जला देना चाहिए।

7. **जोन्स रोग (आँतों की टी.बी.)** :– जोन्स रोग के वैज्ञानिक भाषा में "पैराटुबरकुलोसिस" के नाम से जाना जाता है। यह एक बैक्टीरिया जनित रोग है जिसको माइकोबैक्टीरिया पैराटुबरक्लोसिस कहा जाता है। जोन्स रोग मुख्यतः जुगाली करने वाले व्यस्क पशुओं (पालतू एवं जंगली) की छूत की बीमारी है। चूँकि इससे वयस्क पशुओं में मृत्यु तथा उनकी उत्पादन क्षमता में अत्यधिक गिरावट आती है, इसलिए यह आर्थिक रूप से एक महत्वपूर्ण पशुरोग है। बकरियों में यह रोग गौ–वंश में पाये जाने वाले रोग से भिन्न है क्योंकि गौ–वंश में इस रोग द्वारा जनित लक्षणों में दस्त एक प्रमुख लक्षण है। बकरियों के वजन में निरंतर ह्रास इसका प्रमुख लक्षण है। इस रोग के जीवाणु मुख्यतः छोटी आँत के पिछले एक तिहाई भाग तथा छोटी व बड़ी आँतों के संगम स्थल पर तथा आंतों की गाठों पर अपना असर दिखाते हैं, जिससे आँतों की अवशोषण/शोषण क्षमता नष्ट हो जाती है। फलस्वरूप पशु का पचा हुआ भोजन शरीर में अवशोषित न होकर बाहर निकल जाता है तथा पशु उत्तरोत्तर कमजोरी का शिकार हो जाता है। इस रोग के जीवाणु मुख्यतः मल के द्वारा बाहर निकलते है।

समय से ध्यान न देने पर समूह के काफी पशुओं में यह रोग फैल सकता है तथा एक महामारी का रूप भी ले सकता है। इस रोग का कोई निदान नहीं है, इसलिये पशुओं मे इस जीवाणु के संक्रमण तथा फैलाव की रोकथाम ही एकमात्र रोग से बचने का साधन है। पशु रखरखाव, स्वच्छता एवं वैज्ञानिक विधि द्वारा समय–समय पर खून व मल जाँच रोग से बचाव की प्रमुख विधि है। यदि एक बार एक पशु समूह या स्थान इस रोग से संक्रमित हो जाए तब इस रोग का निष्कासन लगभग असम्भव हो जाता है। इस रोग का कोई प्रमुख लक्षण भी नहीं है तथा रोग ग्रसित पशुओं की पाचन क्षमता पर भी कोई विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ता है, इसलिए यह रोग आज दुनिया के सभी देशों में जहाँ भी पशु समूह में रखे जाते हैं विद्यमान हैं।

**रोग का फैलाव** :– यह प्रायः ठंडे क्षेत्रों में पाया जाने वाला रोग माना जाता है जिसका फैलाव उष्ण जलवायु से रोग ग्रसित पशुओं के आयात से होता है। भेड़ व बकरियों को एक साथ रखने से, दोनों प्रजातियों में यह रोग समान रूप से पाया जाता है। दोनों में एक दूसरे से बीमारी हो सकती है।

**रोग के कारण** :– जोन्स बीमारी, माइकोबेक्टीरियम पैराटुबरकुलोसिस नाम के जीवाणु द्वारा उत्पन्न होती है। इसका आकार छोटा (0.5 1.0 माइक्रोन) होता है, जिसे एसिड फास्ट स्टेन द्वारा रंग कर देखा जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर यह चावल के दाने जैसे और गुलाबी रंग के दिखाई देते हैं तथा अक्सर एक समूह में पाये जाते हैं। ये रोगाणु प्राकृतिक दुष्प्रभावों को आसानी से सहन कर लेते हैं और यह जमीन, गोबर, पानी तथा वातावरण में काफी लम्बे समय तक जिन्दा रहते हैं। यह गोबर के द्वारा तथा चरते पशुओं के साथ चारागाहों में फैल जाते हैं और मुँह के रास्ते बकरियों तथा अन्य जानवरों तक पहुँच जाते हैं।

**रोग का प्रसार** :– इस रोग का प्रसार मुख्यरूप से खाने के चारे व पानी के बर्तनों को पशु के मल एवं मूत्र द्वारा गंदा किये जाने पर होता है। इस रोग के कीटाणु रोगी पशुओं के मल के साथ बाहर आते हैं। चूँकि रोगी पशु प्रारम्भ में कोई खास लक्षण नहीं दिखाते हैं, इसलिये रोगी पशु काफी समय तक रोगाणुओं द्वारा वातावरण को प्रदूषित करते रहते हैं। छोटे बड़े जानवरों को एक साथ रखने पर, छोटी आयु वाले जानवर भी इस रोग से संक्रमित हो जाते हैं। यह प्रसार अधिक प्रभावी तरीके से तभी होता है जब अधिक जानवर एक साथ समूह में रखे जाते हैं। अल्पविकसित प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण छोटी उम्र के पशु इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं।

**रोग की पशुओं में स्थापना** :– गौ–वंश की भांति बकरियाँ भी कम उम्र में इस रोग से ग्रसित हो जाती

है। सामान्यतः बीमारी वयस्क अवस्था तक परिलक्षित नहीं होती है, परन्तु किन्ही विशेष एवं विपरित परिस्थितियों में जैसे प्रजनन के कारण आयी शिथिलता, अनुपयुक्त भोजन या उचित मात्रा में भोजन न उपलब्ध होना, जानवरों मे परजीवियों का प्रकोप, विषम वातावरण आदि कारणों से, बकरियाँ रोग ग्रसित हो जाती हैं तथा जीवाणुओं का मल के साथ निकलना शुरू हो जाता है। धीरे–धीरे पशुओं में इस रोग के लक्षण भी दिखने लगते हैं। भेड़ व बकरियों के वजन में निरन्तर कमी ही प्रमुख लक्षण है। दस्त कुछ विशेष परिस्थितियों में या इस रोग के काफी बढ़ जाने पर होते हैं। गौ–वंश में दस्त एवं वजन में कमी दोनो ही लक्षण पाये जाते हैं।

चूँकि रोगी पशुओं में जब तक लक्षण प्रकट न हों, पहचान करना मुश्किल है। ये पशु वातावरण को प्रदूषित करते रहते हैं। इन जीवाणुओं का कवच बहुत मजबूत होने के कारण, यह वातावरण में काफी समय तक विद्यमान रहते हैं जिसके कारण धीरे–धीरे काफी पशु इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं। यह क्रम धीरे–धीरे पशुओं में चलता रहता है और एक समय में एक समूह की सभी बकरियों के रोगी होने का खतरा बढ़ जाता है।

**रोग के लक्षण** :– स्पष्ट दिखाई देने वाले लक्षण प्रायः पशुओं की एक वर्ष की उम्र के बाद ही दिखाई देते हैं। सामान्यतः दो से तीन वर्ष की बकरियों में निम्न लक्षण आसानी से देखे जा सकते हैं :–

- प्रभावित बकरियों के वजन में निरन्तर कमी होना।
- भूख एवं पाचन क्रिया में लगातार कमी।
- जानवर का सुस्त होना।
- बाह्य त्वचा सूखा होना
- जानवरों में रक्त अल्पता।
- रक्त में प्रोटीन की मात्रा में निरन्तर कमी आना।
- अंतिम अवस्था में दस्त भी हो जाते हैं।

**रोग की पहचान** :–**(i)** लक्षणों के आधार पर। **(ii)** प्रयोगशाला परीक्षणों द्वारा।

बाह्य परीक्षण से यह निश्चित कर पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए रोग को निश्चित रूप से जानने के लिए हमें प्रयोगशाला परीक्षणों पर ही निर्भर होना पड़ता है।

- जोनिन विधि – (त्वचा परीक्षण विधि) :– संक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था जानने के लिए।
- ऐलिसा विधि द्वारा परीक्षण।
- कम्पलीमैन्ट फिक्सेसन विधि।
- मल की स्लाइड बनाकर सूक्ष्मदर्शी द्वारा जाँच।
- कल्चर विधि द्वारा जाँच।

**रोग का नियंत्रण** :– यह रोग एक पशु में न होकर पशुओं के समूह की समस्या है। यदि किसी समूह में एक भी पशु जोन्स बीमारी के लक्षण दिखा रहा है तो इसका अभिप्रायः है कि उस समूह मे और भी ऐसे पशु हैं, जो इस रोग से ग्रसित है परन्तु देखने पर बाहर से लक्षण नहीं प्रतीत होते हैं, अतः समय–समय पर पशुओं के गोबर की जांच बहुत सघनता से विशेषज्ञ द्वारा करवाते रहना चाहिए। पशुओं के रहने का स्थान यदि पक्का है तो फर्श की सफाई फिनाइल द्वारा करानी चाहिए। यदि कच्चा फर्श है तो प्रति तिमाही, उसकी मिट्टी (तीन से छः इंच) को बदलते रहना चाहिए। खाने के बर्तन इत्यादि की सफाई 1–2% कारबोलिक अम्ल द्वारा करवानी चाहिए। जिन वयस्क पशुओं को दस्त की शिकायत हो उन्हें तुरन्त अलग रखने का प्रबंध आवश्यक है। पशुओं के मल का उचित प्रबंधन तथा कम्पोस्टिंग जरूरी है, जिसकी बीमारी के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

**(8) बकरी के बच्चों की 'नाभि सूजन' रोग :–**

- यह रोग नाभि–स्थान में जीवाणुओं के प्रविष्ट होने से होता है।
- 'नाभि' और उसके आस–पास गोलाकार सूजन उभरने लगती है, जो बाद में बहुत बड़ा आकार भी ले सकती है।

- पीड़ित नवजात बच्चों को बुखार हो जाता है तथा वह माँ का दूध पीना छोड़ देता है।
- समय से उपचार न होने पर रोग का असर शरीर के जोड़ो में सूजन का रूप धारण कर प्रकट हो जाता है।
- कभी–कभी नाभि स्थल पर छेद हो जाता है जिसमें से मवाद या स्राव निकलता है। ऐसी जगह पर प्रायः कीड़े भी पड़ जाते हैं।
- अचानक नाभि के फोड़े को चीरना नहीं चाहिए, क्योंकि कभी–कभी हर्निया (पेट के अंदर के अंगो का बाहर उतरना) हो सकता है।
- नाभि के फोड़े की चिकित्सा, आम फोड़े की तरह चीरा लगाकर, रोजाना ड्रेसिंग करके तथा जीवाणु नाशक औषधियों से सफलतापूर्वक की जा सकती है।
- टिंचर–आयोडीन लगाकर बाकी भाग को साफ डोरे से कसकर बाँध देना चाहिए।
- जब तक कि नाल का जुड़ा हुआ भाग सूखकर न गिर जाये, तब तक बच्चें को स्वच्छ जगह पर रखें।

**(9) थनैला रोग (मैस्टाइटिस)** :– यह आमतौर पर जीवाणुओं द्वारा फैलने वाली थनों की बीमारी है। विभिन्न प्रकार के जीवाणु थनैला रोग फैलाते हैं जैसे स्टैफाइलो कोकाई, माइकोप्लाज्मा एक्लैक्शिया, स्ट्रैप्टोकोकस एक्लैक्शिया, स्ट्रैप्टोकोकस डिसग्लैक्सिया, स्ट्रैप्टोकोकस पायोजिनीय, सूड़ोमोनाज आदि। यह रोग थनों में चोट लग जाने से, गलत तरीके से दूध निकालने व गन्दे स्थान पर बकरियों को रखने से हो जाता है। जीवाणु थनों के रास्ते में प्रवेश कर जाते हैं तथा वहाँ पर शीघ्रता से गुणात्मक वृद्धि करते हैं, जिससे थन आमतौर पर कड़े व गर्म हो जाते हैं। दबाने से उनमें दर्द होता है।

**लक्षण** :– थनैला रोग से दूध फटा हुआ व दूध का रंग परिवर्तनशील हो जाता है। थन का आकार भी बदल जाता है। कभी–कभी दूध के साथ खून भी आना आरम्भ हो जाता है। इस रोग में बुखार हो जाता है व बकरियाँ खाना पीना छोड़ देती है।

**रोग का निदान** :– थनों को हाथ से छूने पर कड़ापन महसूस होता है। कैलीफोर्निया मैस्टाइटिस टेस्ट थनैला रोग का पता लगाने में बड़ा उपयोगी है। दूध के जीवाणु कल्चर से भी थनैला रोग का पता लगाया जाता है। दूध में कोशिकाओं की गणना से भी थनैला रोग की पहचान हो सकती है। एक लाख प्रति मि.लि. से कम कोशिकायें यदि दूध में हो तो स्तन स्वस्थ कहलायेगा तथा एक लाख से ऊपर कोशिकायें के होने पर थनैला रोग से ग्रसित कहेंगे।

**उपचार** :– जीवाणु रोग की पहचान पर ही उपचार निर्भर करता है। पैनीसिलीन, स्ट्रैप्टोमाइसिन, सल्फा थायलोज और टैट्रासाइकिलीन जैसी दवायें इस रोग से प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

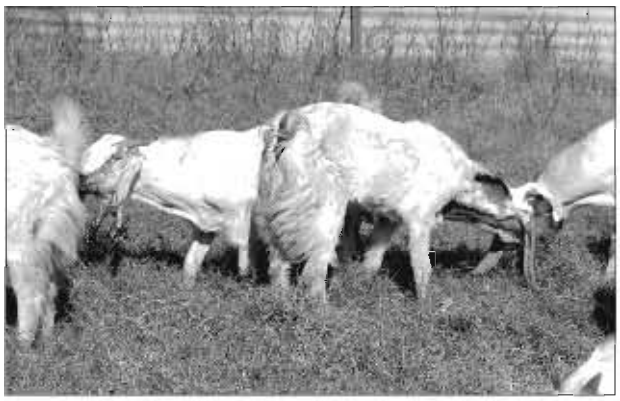

# बकरी के विषाणु जनित रोग

बकरियों में कई प्रकार के विषाणुओं का संक्रमण हो सकता है ये विषाणु मुख्यरूप से निम्नलिखित रोग उत्पन्न करते हैं:–

**बकरी चेचक** : बकरी चेचक एक प्रकार का विषाणु जनित संक्रामक रोग है, जो कि बकरियों एवं भेड़ों को अलग–अलग प्रभावित करते हैं। भेड़ चेचक का विषाणु केवल भेड़ों को ही प्रभावित करता है लेकिन बकरी चेचक का विषाणु न केवल बकरियों को बल्कि भेड़ों को भी समान रूप से प्रभावित करता है। भेड़ों में चेचक का रोग बड़ा व्यापक एवं घातक होता है।

चेचक रोग से ग्रसित बकरियों में उच्च ताप, आँख नाक से स्राव, अयन तथा त्वचा के अन्य भागों पर लालिमायुक्त फफोले बनते है जो कि कुछ समय पश्चात् पुटिका तथा पपड़ी में बदल जाते हैं। रोग का प्रकोप अधिक होने पर मुँह, नाक, पाचन नली एवं जननांगों की भीतरी सतह पर घाव पाये जाते है। प्रतिजैविक औषधियों द्वारा द्वितीयक संक्रमण से बचाव किया जाता है। इस रोग का अभी तक कोई प्रतिरोधक टीका उपलब्ध नहीं है।

**कन्टेजियस ऐक्थाइमा (मौहा) :**

यह एक छूत का विषाणु जनित रोग है जो कि एक महामारी के रूप में आता है, जिससे 70–80 प्रतिशत पशु प्रभावित हो सकते हैं। जिनमें से 5 से 15 प्रतिशत बकरियों के बच्चों में यह रोग अधिक देखा गया है। इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण त्वचा विशेषकर मुँह एवं होठो पर लालिमा युक्त फफोले तथा घाव कुछ समय पश्चात् नाक तथा मुँह के भीतर तक फैल जाते है। जिसके कारण बच्चे दूध पीने में असमर्थ होकर कमजोर हो जाते हैं। इस रोग के बचाव हेतु टीके उपलब्ध नहीं है तथापि प्रतिजैविक औषधियों के प्रयोग से विषाणुओं के द्वितीयक संक्रमण से बचाव किया जा सकता है।

**मुँहपका एवं खुरपका (एफ.एम.डी.) :–**

यह एक विषाणुजनित छूआछूत का रोग है, जो कि दो खुरों वाले पशुओं में पाया जाता है। बकरियों में यह रोग महामारी के रूप में होता है। इस रोग के कारण बकरियों की उत्पादन क्षमता पर विपरीत असर पड़ने से आर्थिक हानि होती है।

प्रारम्भिक लक्षणों में तेज बुखार (104 से 106 डिग्री) के साथ उत्पादन में कमी, मुँह से लार का बहना तथा मुँह के भीतर फफोले अथवा पुटिकाऐं बनने लगती है जो कि बाद में फट कर घाव बन जाते हैं। मुँह में घाव होने के कारण दर्द होता है जिसके कारण पशु खाने पीने में असमर्थ हो जाता है। इसी प्रकार के घाव खुरों के बीच में भी हो जाते हैं जिसके कारण पशु लंगडाने लगता है। घावों को भरने में लगभग एक सप्ताह का समय लग सकता है। मुँह, मसूडों, खुरों के बीच में, तलवों में, होंठ तथा थनों के छालों में द्वितीयक जीवाणुओं के संक्रमण के कारण मुखीय विक्षनियाँ तीव्र हो जाती हैं। थनों तथा अयनों की विक्षतियों के कारण थनैला रोग हो सकता है जिससे काफी आर्थिक हानि हो सकती है। साधारणतः बकरियों में मुँह एवं खुरपका रोग की तीव्रता बहुत कम होती है परन्तु इस रोग से ग्रसित बकरियाँ दूसरे स्वस्थ जानवरों में रोग फैलाने में काफी सहायक होती हे। अतः रोगी बकरियों को स्वस्थ बकरियों से अलग रखना चाहिए। रोग से पीड़ित पशु के मुँह एवं खुरों को पोटेशियम परमैग्नेट के घोल से दिन में कम से कम दो बार धोना चाहिए। विटामिन ए के टीके तथा जिंक लवण पशुओं को देने से विक्षतियाँ कम उपलब्ध है जिसके द्वारा बीमारी का बचाव सम्भव है। यह टीका प्रथम बार चार माह की आयु पर लगाया जाता है तथा तत्पश्चात प्रत्येक 6 महीने पर लगाते है। यह वही टीका है जो कि गाय एवं भैंसों को लगाया जाता है।

**ब्ल्यू टंग :–** यह भी एक विषाणु जनित रोग है जो कि रियोविरडी परिवार किस्म के विषाणु द्वारा क्यूलिक्वारूिमत नामक मच्छर के माध्यम से फैलता है। बकरियों की अपेक्षा भेड़ों में यह रोग सामान्य से लेकर महामारी के रूप में पाया जाता है। यह रोग उनमें ज्यादा पाया जाता है जहाँ कि इस रोग को फैलाने के माध्यम के रूप में क्यूलिक्वायडिस मच्छर पाया जाता है।

इस रोग से ग्रसित पशु को तेज बुखार (104º) होकर पशु की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती जाती है। मसूड़ों, गाल तथा जीभ पर छाले तथा घाव हो जाते हैं तथा कुछ जानवरों की जीभ नीले बैंगनी रंग की हो जाती है। खुरों के उपर लालिमायुक्त सूजन हो जाती है, जिनसे खून निकलने के कारण पशु लंगडाने लगता है। ग्याभिन भेड़ों में गर्भपात हो सकता है तथा पैदा होने वाले बच्चों में जन्मजात असामान्यता पाई जाती है। इस रोग से पशुओं की मृत्युदर 30 प्रतिशत तक हो सकती है।

**बकरी प्लेग (पी.पी.आर.) :**

पी.पी.आर. एक विषाणु जनित रोग है जो कि भारत में विदेशों से लाई गई बकरियों के द्वारा आयात हुआ है। वर्तमान में यह रोग महामारी का रूप ले चुका है जिसके द्वारा अनुमानित आर्थिक क्षति होती है।

पी.पी.आर. एक विषाणु (मोरबिली वाइरस) जनित रोग है, जो हर उम्र और लिंग की बकरियों को ग्रसित कर सकता है तथा बकरियों के रेवड़ जो कि इस रोग के प्रति कम प्रतिरोधक शक्ति रखते हैं इस रोग के स्त्रोत बने रहते है। यह विषाणु रोगी पशु के नाक और आँख के पानी, बलगम, मल, मूत्र आदि में प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है। अतः इस रोग से ग्रसित पशुओं द्वारा स्वस्थ पशुओं में रोग फैलाया जाता है।

इस रोग के प्राथमिक लक्षणों में बुखार, आँख एवं नाक से स्राव, आँख एवं नाक के बाहरी कोमल हिस्सों का लाल हो जाना प्रमुख हैं। इसके साथ ही जीभ, तालू, होंठ तथा मुँह के अंदर छाले पड़ जाते हैं जिनसे प्रचुर मात्रा में तार जैसी लार बहती रहती है। रोग ग्रसित जानवर में दस्तों का लगना, छींकना, खाँसना, साँस लेने में कठिनाई देखी जाती है। रोग के अंतिम क्षणों में अन्य विषाणुओं तथा जीवाणु द्वारा रोगी पशु निमोनिया से ग्रसित हो जाता है। प्रारम्भिक दस्त पेचिश में बदल सकते हैं। भेड़ों की अपेक्षा बकरियों में यह रोग अधिक विकराल रूप धारण कर लेता है। इस रोग से ग्रसित ग्याभिन पशुओं का गर्भपात भी हो सकता है। पशु की रोग ग्रसित होने के एक सप्ताह के भीतर मृत्यु हो जाती है।

इस रोग का निदान रोग के लक्षणों, शव परीक्षण, विषाणु प्रथक्कीकरण एवं उनका अभिलक्षण एवं विषाणुओं के तन्तुओं में पहचान द्वारा संभव है।

जो बकरियाँ पी.पी.आर. की बीमारी होने के बाद बच जाती हैं उनमें इस रोग के विरूद्ध भविष्य में प्रतिरोधक शक्ति आ जाती है जो कि रोग के उबरने के चार वर्ष पश्चात् तक रह सकती है। पी.पी.आर. रोग की रोकथाम के लिए पशु प्लेग ऊतक टीके का इस्तेमाल किया जाता है।

# बकरियों में परजीवी रोग एवं उनकी रोकथाम

बकरियों में परजीवी रोगों का पाया जाना एक सामान्य बात है। इनके द्वारा बकरियों के दुग्ध उत्पादन में कमी व मांस की गुणवत्ता ह्रास होने के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव पड़ता है। यद्यपि ये बीमारियाँ हमेशा घातक नहीं होती हैं फिर भी समय रहते रोकथाम के उपाय न किए जाने पर पशुओं के उत्पादन में अपूर्णनीय क्षति पहुँचती हैं।

**बकरियों के मुख्य परजीवी रोग निम्न प्रकार हैं :–**

(1) **पेराऐम्फीस्टोमिएसिस** :– यह रोग मुख्यतः जाड़े की ऋतु में बकरियों की आंत में पाये जाने वाले अपरिपक्व परजीवियों के कारण होता है। पशुओं में इस रोग की शुरूआत परजीवी लारवा के कारण होती है जो प्रदूषित पानी एवं चारागाह में पाये जाते हैं। इन लारवा का विकास तालाबों व झीलों में पाये जाने वाले घोंघे (स्नेल) के शरीर में होता है। बकरियों द्वारा ग्रहण करने के उपरान्त ये लारवा अपरिपक्व परजीवी के रूप में आतों की दीवार को भारी क्षति पहुँचाते है।

**लक्षण** :– इस रोग में बकरियों को काफी बदबूदार दस्त होते हैं। रोगी पशु के शरीर का पानी दस्त के रूप में बाहर निकल जाने से वह काफी प्यास का अनुभव करता है तथा ज्यादा मात्रा में पानी पीता है। निचले जबड़े के नीचे सूजन आ जाती है जिसे आसानी से दूर से देखा जा सकता है। समुचित इलाज न होने पर प्रायः बकरी मर जाती है।

**रोकथाम** :–

- प्रदूषित तालाबों के किनारे बकरियों को नहीं चराना चाहिए।
- उसको स्वच्छ जल पिलाना चाहिए।
- ऐसे तालाबों, जिनमें घोंघे हो, को कंटीले तारों से घेर देना चाहिए ताकि पशु वहाँ तक न पहुँच सकें।
- वर्षा ऋतु से पहले एवं बाद में पेट के कीड़ों को मारने वाली दवाऐं पिलानी चाहिए।

**उपचार** :– आक्सीक्लोजानाइड एवं निकलोसामाइड काफी प्रभावकारी औषधियाँ हैं।

(2) **फैसिओलिएसिस** :– बकरियों में पाये जाने वाले इस रोग के परजीवी का आकार एक चपटी पत्ती के समान होता है, जो यकृत की नलिकाओं में पाया जाता है। स्वस्थ्य पशु में यह रोग प्रदूषित पानी पीने एवं उसके चारों ओर स्थित चारागाहों में चरने से होता है। इस बीमारी को फैलाने में घोंघे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि लारवा (परजीवी) का विकास इन्हीं में होता है।

**लक्षण** :– यदि पशु द्वारा अधिक संख्या में लारवा ग्रहण कर लिए जाये तो यह रोग काफी उग्र रूप धारण कर लेता है और बकरियाँ सुस्त होकर चारा खाना छोड़ देती हैं तथा पेट में दर्द की शिकायत दर्शाती हैं। पशु का पेट फूल जाता है और छूने से दर्द होता है। इसके साथ–साथ चलने में भी तकलीफ होती है। परजीवी का संक्रमण कम होने से रोग काफी लम्बे समय तक चलता है। बकरियों में दस्त या कभी–कभी कब्ज की शिकायत भी पाई जाती है तथा वे कमजोर हो जाती है।

**निदान** :– रोग ग्रसित पशुओं के गोबर (मल) की जाँच करने पर उसमें परजीवी के अन्डे पाये जाते हैं।

**उपचार** :– आक्सीक्लोजानाइड 10 मि.ग्रा. प्रति किलोग्राम की दर से प्रभावकारी औषधि है।

**रोकथाम** :–

- पशुओं को स्वच्छ पानी पिलाना चाहिए।
- घोंघे युक्त तालाबों के आस–पास चराई न करायें।

- नियमित रूप से पशुओं को कृमिनाशक दवा पिलायें।

**(3) सिस्टोसोमिएसिस** :– बकरियों में यह रोग आंत की रक्त नलिकाओं में पाये जाने वाले परजीवी के कारण होता है। परजीवी के अण्डे पशु की आंत के रास्ते गुजरते समय आंत की दीवार को भारी क्षति पहुँचाते हैं। परजीवी रक्त नलिकाओं में रहकर काफी मात्रा में पशु रक्त चूसते हैं। पशुओं में परजीवी त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते है तथा आँत की रक्त नलिकाओं में पहुँचकर व्यस्क अवस्था प्राप्त करते हैं।

**लक्षण** :– यह परजीवी रक्त चूसने वाला है। अतः इसके कारण पशुओं में रक्ताल्पता हो जाती है। इसके अण्डे आँतों की दीवार एवं यकृत मे जलन पैदा करते हैं जिससे वहाँ पर गांठें बन जाती है। आँतों में अल्सर्स (घाव) भी हो सकते हैं। प्रभावित पशु चारा खाना छोड़कर दस्त करने लगता है तथा दिन पर दिन कमजोर होता जाता है। शरीर की श्लेष्मा झिल्लियाँ पीली पड़ जाती है। प्रवास के दौरान लारवा यकृत में भारी क्षति पहुँचाते हैं।

**निदान** :– लक्षणों के आधार पर रोग का पता लगाया जा सकता है। मल जाँच परीक्षण के द्वारा रोग का निदान सम्भव है।

**उपचार** :– हाईकेन्थेस (6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. भार) इस रोग के लिये उत्तम औषधि है। इसके अतिरिक्त टारटार ऐमेटिक एवं ऐन्टीमोसीन भी काफी प्रभावी दवाऐं हैं। प्राजिक्विंटल नामक औषधि का प्रयोग इस रोग का सफलतम उपचार माना गया है।

**रोकथाम** :–

- बकरियों को स्वच्छ पानी पिलाना चाहिए।
- पशुओं के मल/गोबर को अच्छी तरह सड़ाना चाहिए। इससे परजीवी लारवा की मृत्यु हो जाती है।
- घोंघे युक्त तालाबों/झीलों को चारों ओर से तार से घेर देना चाहिए ताकि पशु वहाँ तक न पहुँच सकें।

**(4) टीनिऐसिस** :– बकरियों में यह रोग आँत में पाये जाने वाले परजीवी के कारण होता है। यह परजीवी फीते की तरह होता है तथा इसकी लम्बाई 2 से 4 मीटर तक हो जाती है। कृमि अपने अगले हिस्से के द्वारा आँत की दीवार में घुसा रहता है तथा इसका शेष भाग आँत में लटका रहता है।

**लक्षण** :– यह रोग प्रौढ़ पशुओं में अधिक हानिकारक नहीं है परन्तु छः माह से कम आयु के मेमनों में इसका अधिक प्रभाव देखा गया है। कभी–कभी संक्रमण इतना भयंकर हो जाता है कि पशु की पूरी छोटी आँत इनसे भर जाती है परिणाम स्वरूप पशु को कब्ज हो जाता है। छोटे–छोटे बच्चों का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जाता है तथा उनकी वृद्धि रूक जाती है।

**निदान** :– परजीवी के छोटे–छोटे टुकड़े चावल के भाँति पशु के मल/गोबर में पाये जाते हैं। इनकी जाँच द्वारा परजीवी की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

**उपचार** :–

(क) लेड आरसीनेट : वयस्क बकरी में 1 ग्रा./पशु तथा मेमने में 0.5 ग्रा./पशु

(ख) निकलोसामाईड : 75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की दर से तथा अधिकतम खुराक – 1 ग्रा.

**रोकथाम** :–

पशु को जमीन पर चारा डालकर न खिलाऐं।

उसे समय–समय पर कृमि नाशक दवा दें।

**(5) गिड** :– यह रोग मुख्य रूप से भेड़ों में पाया जाता है परन्तु अक्सर बकरियाँ भी उससे प्रभावित होती हैं। यह बीमारी टीनिया मल्टीसेप नामक एक परजीवी के लारवा के द्वारा होती है। यह लारवा एक पानी की थैली की भाँति मस्तिष्क में विकसित होता है। बकरियों में यह रोग उनके द्वारा कुत्ते के मल से संक्रमित भोजन

खाने से होता है, क्योंकि यह परजीवी प्रौढ़ावस्था में कुत्तों में पाया जाता है। प्रभावित कुत्तों के मल में परजीवी के अंडे पाये जाते हैं जो बकरियों के चारे को प्रदूषित करते हैं।

**लक्षण** :– रोग के लक्षण इस बात पर निर्भर करते हैं कि थैली/सिस्ट मस्तिष्क के किस भाग में स्थित है। साधारणतः बकरी अपने सिर को एक ओर झुका कर रखती है तथा गोल चक्कर लगाती है। कभी सिर को ऊँचा कर सामने की ओर चलती है जब तक कि किसी वस्तु से टकरा न जाये। कभी–कभी थैली इतनी बड़ी होती है कि इसका दबाब पड़ने से बकरी लड़खड़ा कर चलती है और पिछले पैरों में लकवा मार जाता है। बकरी आँख से अंधी भी हो सकती है तथा उसका शारीरिक संतुलन समाप्त हो जाता है। पशु दाना–चारा खाना छोड़ देता है तथा कमजोर होकर मर जाता है।

**निदान** :–

(i) लक्षणों द्वारा।

(ii) पशु की खोपड़ी की हड्डी थैली की उपस्थिति के कारण नरम पड़ जाती है।

**उपचार** :– सिर्फ शल्य क्रिया द्वारा सम्भव है। प्राजिक्वींटल 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार भी प्रभावकारी औषधि मानी गई है।

**रोकथाम** :– पशु के मृत शरीर का उचित निस्तारण करें जिससे इसे कुत्ते ना खा सकें। कुत्तों को नियमित कृमिनाशक दवा पिलायें।

**(6) पैरासिटिक गैस्ट्राईटिस** :– यह बकरियों में पायी जाने वाली घातक बीमारी है, जो पेट व आँत में पाये जाने वाले परजीवियों के कारण होती है। ये परजीवी रक्त शोषण द्वारा आँत की दीवारों में घाव पैदाकर पशु को हानि पहुँचाते हैं। आँतों में ज्यादा घाव हो जाने पर पशुओं द्वारा भोजन तत्वों को अवशोषण नहीं हो पाता है जिसके कारण उनका वजन, दुग्ध व मांस उत्पादन कम हो जाता है। बकरियों में यह रोग परजीवी लारवा द्वारा संक्रमित भोजन ग्रहण करने से होता है। यह लारवा पशु के पेट व आँतों में जाकर प्रौढ़ावस्था तक विकसित होकर बने रहते हैं। इन कृमियों की उपस्थिति शरीर में अति हानिकारक है जो विभिन्न लक्षणों के अतिरिक्त अन्यरूपों में परिलक्षित होती है।

**लक्षण** :– यह कृमि रक्त चूसते हैं, अतः प्रभावित पशु में रक्तलप्ता हो जाती है। कभी–कभी इतनी अधिक हो जाती कि पशु किसी रोग के लक्षण प्रकट किये बिना मर जाता है। यदि बीमारी लम्बे समय तक चलती है तो निचले जबड़े के नीचे सूजन आ जाती है। रोगी पशु कमजोर हो जाता है। त्वचा पीली पड़ जाती है तथा बाल गिरने लगते हैं। कभी–कभी पशु में दस्त या कब्ज भी हो जाता है।

**निदान** :– रोग ग्रसित पशु की मल जाँच करके रोग का पता लगाया जा सकता है।

**उपचार** :– फेनबेंडाजोल (8मि.ग्रा./कि.ग्रा.) ऐलवेंडाजोल (5–10 मि.ग्रा./कि.ग्रा.)

**रोकथाम** :– पशु को चारा व दाना के साथ नियमित रूप से खनिज लवण भी देना चाहिए।

- आवश्यकता से अधिक चारा नहीं खिलाना चाहिए।
- रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें।
- बच्चे रोग के अतिग्राही हैं, अतः यथासमय बच्चों को बड़ी बकरियों से अलग रखें।
- बकरियों के चराई एवं रहने के क्षेत्र में नमी होनी चाहिए।
- चारे व दाने को जमीन से ऊपर चरई में खिलाना चाहिए।
- नियमित रूप से कृमिनाशक औषधियों का प्रयोग करें।

**(7) परजीवी निमोनिया** :– यह रोग श्वांस नली में पाये जाने वाले परजीवी के कारण होता है। परजीवी श्वास नली की भीतरी दीवार व गुहा को लगातार हानि पहुँचाता रहता है, जिससे पशु को लगातार खाँसी उठती है। इस रोग से पीड़ित पशु अपने मल में पाये जाने वाले लारवा से चारागाह क्षेत्र को संक्रमित करता रहता

है। स्वस्थ पशु चराई के समय उन लारवा को ग्रहण कर लेता है और रोग ग्रसित हो जाता है। घोंघे (स्नेल) इस रोग में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

**लक्षण** :– मुख्यतः बकरियों के बच्चे इस रोग से प्रभावित होते हैं। यह रोग सभी आयु वर्ग में हो सकता है तथा लम्बे समय तक चलता है। पशु को खाँसी आती है और नथुनों में म्युकस जैसा गाढ़ा स्राव आता रहता है। श्वांस लेने में कठिनाई/रूकावट होती है तथा श्वांस तेजी से चलती है। कभी–कभी बुखार भी हो सकता है। पशु चारा खाना छोड़ देता है तथा कमजोर होता जाता है।

**निदान** :– लक्षणों के आधार पर मल परीक्षण द्वारा।

**उपचार** :– ऐल्बेन्डाजोल (7.5–10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. भार) एक प्रभावी दवा है।

**रोकथाम** :–

- रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें।
- पशुओं का चराई क्षेत्र बदल दें अथवा बाड़े में रखकर चारा खिलाऐं।
- लंगवर्म का नियमित टीका लगवायें।

**(8) कोक्सीडियोसिस** :– यह 4–6 माह की बकरियों में पाई जाने वाली घातक बीमारी है। कोक्सीडियल परजीवी पशु की आँत की दीवारों में कालोनी (समूह) के रूप में पाये जाते हैं। कुछ समय बाद यह कालोनी फटकर आंत की दीवारों पर घाव पैदा कर देती है, जिससे खून रिसने लगता है। स्वस्थ पशु में यह रोग इस परजीवी द्वारा प्रदूषित चारा खाने से फैलता है। रोगी पशु लगातार अपने मल के साथ परजीवी की सिस्ट विसर्जित करता है, जो पीने के पानी एवं चारे को प्रदूषित करता रहता है।

**लक्षण** :– इस बीमारी के लक्षण संक्रमण के स्तर पर निर्भर करते हैं। प्रभावित पशु में दुर्गन्ध युक्त दस्त पील, हरे रंग के कभी–कभी रक्त के साथ पाये जाते हैं। रोगी पशु में पेट दर्द, रक्ताल्पता तथा चारा न खाने के लक्षण पाये जाते हैं। रोगी पशु काफी कमजोर हो जाता है। यद्यपि बड़े पशु भी इस रोग से प्रभावित होते हैं पर छोटे बच्चों के लिए यह रोग अधिक घातक है।

**निदान** :– रोगी पशु के मल की जाँच करने पर रोग की पहचान की जा सकती है।

**उपचार** :–

(i) सल्फोनामाइड समूह की दवाइयों द्वारा सफलतापूर्वक उपचार सम्भव है।

(ii) ऐम्प्रोलियम 50–100 मि.ली./कि.ग्रा. शरीर भार पांच दिन तक पिलायें।

**(9) जुओं का संक्रमण या लाउजीनेस** :– यह बीमारी बकरियों में जाड़ों में जूओं के संक्रमण के कारण होती है। जूँ एक प्रकार का बाह्य परजीवी है जो स्वस्थ पशु का रक्त शोषण करती है। जनवरी व फरवरी माह में प्रभावित पशु की अवस्था इतनी गम्भीर हो जाती है कि त्वचा पर एक छोटा सा भाग खुरचने पर भारी संख्या में परजीवी एवं उसके अण्डे पाये जाते हैं। यद्यपि इस रोग से प्रभावित पशु की मृत्यु नहीं होती है फिर भी जुओं के संक्रमण से बकरी पालन में काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। इनके कारण दुग्ध एवं मांस उत्पादन में काफी कमी व चमड़े की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। यह परजीवी बकरियों की चमड़ी में बालों पर चिपके रहते हैं और अपने अन्डे बालो के आधार पर देते हैं जो कि सफेद भूरे रंग के चमकीले होते हैं। परजीवी स्वस्थ पशुओं में रोगी पशु से सम्पर्क के कारण फैलता है। विशेषकर जाड़ों में ठण्ड से बचने या गर्मी प्राप्त करने के उद्देश्य से जब पशु एक दूसरे के निकट आते हैं, तो उनमें संक्रमण हो जाता है। परजीवी स्वस्थ पशु से अलग जीवित नहीं रह सकती।

**लक्षण** :– स्वस्थ बकरियों में जूओं से कोई विशेष हानि नहीं है परन्तु यदि पशु बीमार एवं कमजोर है तो जूओं का संक्रमण गम्भीर हानि पहुँचाता है। प्रभावित पशु में लगातार खुजली होती होती है। कभी–कभी पशु शरीर को पेड़/दीवार से रगड़ता रहता है और चमड़ी में घाव कर लेता है। बाल टूटने से शरीर पर

छोटे–छोटे धब्बे हो जाते हैं। संक्रमण अधिक होने से पशु में रक्ताल्पता हो जाती है, वह चारा खाना छोड़ देता है तथा कमजोर होता जाता है।

**उपचार** :– पशुओं को समय–समय पर मैलाथियान नामक कीटनाशक के 0.5 से 0.8 प्रतिशत (एक लीटर पानी में 5.8 मि.ली. दवा) घोल से नहलाने से ठीक हो जाता है।

**रोकथामः–**

- यह रोग सम्पर्क द्वारा फैलता है, अतः कम जगह में ज्यादा पशु नहीं रखे जाने चाहिए।
- बकरियों के बाल काटकर भी जूओं के प्रकोप में कमी लायी जाती है।

(10) **टिक्स/किलनी प्रकोप** :– किलनी या टिक्स मुख्यतः वर्षा ऋतु में बकरियों को प्रभावित करने वाला परजीवी रोग है। यह परजीवी, बकरियों की चमड़ी पर चिपक कर खून चूसते हैं तथा चमड़ी में घाव बना देते हैं। पशु को खुजली होती है और खून की कमी हो जाती है। परजीवी कुछ अन्य बीमारियों को भी बकरियों में फैला सकते है।

**लक्षण** :– यदि रोग का प्रकोप अधिक है तो चमड़े की गुणवत्ता पर भारी प्रभाव पड़ता है। परजीवी काफी मात्रा में रक्त चूसता है, अतः रोगी पशु में रक्त की कमी हो सकती है। रोगी पशु धीरे कमजोर हो जाता है। लगातार खुजली के कारण पशु ठीक से भोजन ग्रहण नहीं कर पाता और उसका वजन कम हो जाता है। दूध और मांस का उत्पादन भी कम हो जाता है। यह परजीवी अन्य कुछ रोगों को फैलाने में संवाहक का काम भी करते हैं। कभी–कभी परजीवी कुछ विषैले पदार्थ भी रक्त में छोड़ते हैं जिससे पशु के पिछले पैरों में लकवा मार जाता है।

**उपचार** :– पशुओं को मैलाथियान (0.5 प्रतिशत) के घोल में नहलाने से इस रोग से छुटकारा दिलाया जा सकता है।

**रोकथामः–** प्रभावित पशुओं को स्वस्थ पशुओं से दूर रखना चाहिए।

# बकरियों के कुछ अन्य रोग

वैसे तो बकरियाँ आमतौर पर अपना आहार चारागाहों से ही लेती हैं, परन्तु आवश्यक तत्वों की उचित मात्रा पूरी करने के लिये पूरक खाद्यों की भी आवश्यकता होती है। जब पूरक खाद्य देने पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता तो लवण स्वल्पता रोग हो सकते हैं :–

1. **खनिज लवणों की कमी** :– फास्फोरस की कमी आमतौर पर बाँधकर रखने वाली बकरियों में हो सकती है। जिन्हें केवल सूखी घास पर पाला जाता है। कुछ क्षेत्रों में आयोडीन की कमी से बकरियों की गल ग्रन्थि बढ़ जाती है और साधारण गल केन्द्र रोग का रूप ले लेती है। नवजात बच्चों में आयोडीन की कमी से गल ग्रंथि बढ़ जाती है, शरीर पर बाल नहीं आते और मृत्युदर बढ़ जाती है। गर्भवती बकरियों को खुराक के साथ 0.07 प्रतिशत आयोडीन युक्त नमक देने से उनके बच्चों में आयोडीन की कमी नहीं होती है। ताम्र स्वल्पता बकरियों में देखने को मिलती है। जिन चारागाहों में ताम्र 3 मिली.ग्रा. प्रति किलो शुष्क चारे की मात्रा से कम हो, तो ताम्र अल्पता रोग होने की सम्भावनाऐं बढ़ जाती हैं।

2. **आफरा** :– आमतौर पर अफारा एक बहुत ही भयानक बीमारी है। इस बीमारी में गैस के बनने एवं उसके इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है। पशु जब काफी मात्रा में हरा चारा या ऐसा भोजन जिससे गैस अधिक बनती हो, खा लेता हो, तो आफरा हो जाता है। पेट में गैस इकट्ठी हो जाती है जो पेट में पानी के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भी रह सकती है। यह शरीर से बाहर न निकलकर शरीर के अंदर अन्य भागों पर दबाब डालती है। गैसों का दबाव मुख्यतः फेफड़ों पर पड़ता है।

   **कारणः**– यह रोग अधिकतर बरसात या इसके बाद होता है। जब पशु को पानी से भीगी हरी घास अधिक मात्रा में मिलती है और पशु जरूरत से ज्यादा चारा खा लेता है, आफरा हो सकता है। मुख्यतः यह देखा गया है कि पशुओं में कमजोरी के कारण पेट की मांसपेशियों में शिथिलता आ जाने से भी आफरा हो जाता है। इस बीमारी में पशु बहुत समय तक एक ही करवट से लेटा रहता है ऐसी स्थिति में पाचन क्रिया सही तरीके से नहीं हो पाती है, जिससे पेट में गैस इकट्ठी होकर आफरा कर देती है।

   **लक्षण** :– पशु में आफरा बीमारी के पता करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। बायीं तरफ का पेट बहुत अधिक फूल जाता है। यदि बायीं तरफ हल्के हाथ से पेट को थपथपाया जाये तो एक ढप–ढप जैसी आवाज होती है, जानवर खाना छोड़ देता है और उसकी सांस लेने की गति बढ़ जाती है। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि वह सांस ठीक प्रकार से नहीं ले पा रहा है। पशु के मुँह से झाग आने लगते हैं और वह बैचेन हो जाता है व दर्द जैसा महसूस करता है। समय पर इलाज न होने के कारण पशु जमीन पर एक करवट से गिर जाता है और कुछ ही क्षणों में उसकी मृत्यु हो जाती है।

   **उपचार** :– बीमारी के लक्षण होते ही बकरी पालकों को चाहिए कि वह उनके इलाज की व्यवस्था तुरन्त करें और पशु चिकित्सक के आने तक पशु को धीरे–धीरे घुमाते रहें तथा ऐसी जगह खड़ा करें जिससे आगे की टाँगे ऊँचाई पर तथा पीछे की टाँगें कुछ नीची हों जिससे उसके फेंफड़ों पर दबाब न पड़े। उसकी जीभ को बराबर चलाते रहें या एक लकड़ी को उसके मुँह में जबड़ों के बीच लम्बाई में बांध दें जिससे पशु मुँह चलाता रहे तथा गैस मुँह के रास्ते बाहर निकल जाये। कोशिश यह होनी चाहिए कि पेट से गैस बाहर निकले। तारपीन का तेल 10 ग्राम हींग 2 ग्राम व अलसी का तेल 70 ग्राम मिलाकर बकरी को पिलाने से भी आराम मिलता है, परन्तु दवा पिलाते समय विशेष ध्यान रखना जरूरी है कि कहीं तेल पेट के बजाय पशु के फैफड़ों में न चला जाये।

**रोकथाम** :– जहाँ तक सम्भव हो बकरियों को हरा तथा भीगा चारा अधिक मात्रा में नहीं खिलाना चाहिए। हरे चारे के साथ भूसा खिलाना जरूरी है। सड़ा, गला या दूषित चारा तथा अधिक मात्रा में दाना पशु को नहीं खिलाना चाहिए। आफरा के लक्षण दिखाई देने के बाद बकरी पालकों को चाहिए कि तुरन्त सही चिकित्सा का प्रबंध करें।

3. **घावों में कीड़े पड़ना** :– गर्मी एवं बरसात के दिनों में पशुओं के घावों में अक्सर कीड़े पड़ जाते हैं, जो कि मक्खियाँ द्वारा घावों में अण्डे देने के कारण होते हैं। सींग के नीचे तथा कानों में कीड़े पड़ने से पशु बार–बार सिर हिलाता है तथा खुर से इस भाग को खुजलाने की कोशिश करता है। हर समय पशु का परेशान रहना, ऐसे घावों को बार–बार चाटना, घाव से लगातार हल्का–हल्का रिसाव होना तथा घाव के आस–पास छोटे–छोटे छेद होना आदि घाव में कीड़े पड़ने की प्रमुख पहचान है। घावों में पड़े कीड़ों की विशेषता यह है कि वह सतह की ओर धीरे–धीरे आते है और पुनः घाव की गहराई में चले जाते हैं। इससे पशु को बड़ी बैचेनी होती है।

**उपचार** :–

- ऐसे घावों को 10 प्रतिशत नमक के घोल से धोना चाहिए।
- नेप्थलीन की गोलियों का चूर्ण (कपड़े में रखने वाली गोलिया) ऐसे घाव पर दिन में 2–3 बार रखने से कीड़े या तो बाहर निकल आते हैं या मर जाते हैं।
- फिनायल या कार्बोलिक अम्ल 3 प्रतिशत, तारपीन का तेल 3 प्रतिशत तथा क्लोरोफार्म 3 प्रतिशत, सरसों या अलसी के तेल में मिलाकर लगाने से काफी आराम मिलता है।
- सींग के पास जमा हुए कीड़ों को मारने के लिए फिनायल या तारपीन के तेल में पट्टी को भिगोकर बार–बार सींग के नीचे रखकर चलाना चाहिए।
- बाजार में उपलब्ध कुछ पेटेंट दवायें जैसे लारेक्सीन, हीमेक्स, मरहम तथा मैगीसाइट तेल कीड़ों के घावों में लाभकारी पाये गये हैं।

4. **खुजली** :– खुजली रोग से सभी परिचित है। यह एक छूत का रोग है। इस रोग के फैलाने वाले सारकोप्टीक व सोरोप्टीक नामक सूक्ष्म परजीवी पशु की चमड़ी पर स्थान जमाकर अंडे देना शुरू कर देते हैं। ये त्वचा के भीतर घुस जाते हैं व सुरंग बनाकर त्वचा की परत के नीचे घूमते रहते हैं। फलस्वरूप पशु की चमड़ी में खाज शुरू हो जाती है। यह खुजली मुख्यतः शरीर के ऊपरी भाग जैसे गर्दन, मुँह, कानों पर होती है तथा धीरे–धीरे सम्पूर्ण शरीर पर फैल जाती है। शुरू में पशु पैंरों या दाँतों से खुजलाता है। फिर पेड़–दीवार से रगड़ता है या अन्य पशुओं के शरीर से। रोग के शुरू होते ही ध्यान ना देने पर पशु की चमड़ी मोटी हो जाती है व धीरे–धीरे खुजली भंयकर रूप धारण कर लेती है, जिससे पशु कमजोर हो जाता है। शरीर से बीच–बीच से खून निकलता रहता है और रोगी पशु मौत का शिकार बन जाता है।

**उपचार** :– पशु के शरीर के जिस भाग में यह रोग शुरू हो, उस स्थान के बाल काटकर उसे टेटमोसोल साबुन से धोंयें और सूख जाने पर नीचे लिखी कोई दवा लगायें। गोल्डन लोशन बनाने के लिये सबलाइम्ड गन्धक 2.5 ग्राम, केल्शियम आक्साईड 500 ग्राम तथा 100 सी.सी. पानी लें।

- गंधक एक भाग, जिंक आक्साईड 2 भाग तथा तेल सात भाग लेकर मिला लें। इसके बाद टैटमोसोल एक भाग व दस भाग पानी लें, फिर दोनो को मिलाकर प्रतिदिन तीन बार लगायें।
- नेगवास इमल्सन (98–99 प्रतिशत) लेकर उसका 0.15 प्रतिशत घोल बनाकर एक सप्ताह में तीन बार लगायें।
- एस्केवियोल दवा को दो बार लगायें तथा पांच–छः दिन के अंतराल पर पुनः लगायें।
- आइवरमेक्टिन दवा 0.5 मि.ली. प्रति 30 कि.ग्रा. वजन के हिसाब में सबक्यूटेनियस मार्ग से या 0.5 प्रतिशत सायथान का घोल एक सप्ताह के अंतर से 3–4 बार लगायें।

# बकरियों के स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

**"पशु रोगों के उपचार से अच्छा है उनसे बचाव"**

रोग उपचार की अपेक्षा पशुओं को रोगों से बचाना अधिक उचित है।

- देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बकरी व्यवसाय का महत्वपूर्ण योगदान है।
- अनुमानतः देश के 50 लाख परिवार भेड़/बकरी पालन एवं इससे संबंधित व्यवसाय कार्यों से जुड़े हुए हैं।
- ऐसे अनेक घटक हैं जो बकरी उत्पादकता को प्रभावित करते हैं, उनमें बकरी स्वास्थ्य सबसे महत्वपूर्ण है।
- बकरी उद्योग को विभिन्न जीवाणु, विषाणु एवं परजीवी रोगों के कारण भंयकर आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है।
- किसी रोग की पहचान एवं उससे पशुओं का बचाव, पशु स्वास्थ्य कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू होता है।
- बकरियों में फैलने वाले रोगों से बचाव के तरीके अपनाकर तथा उनकी विशेष देखभाल करके इस व्यवसाय से दोगुनी आय प्राप्त की जा सकती है।
- एक श्रेष्ठ प्रबंधन व्यवस्था से तात्पर्य है, पशुओं का उत्तम स्वास्थ्य, उच्च उत्पादक क्षमता एवं उनकी संख्या में गुणात्मक वृद्धि।

**रोगग्रस्तता/संक्रमण ग्राह्यता के कारक**

- प्रतिकूल मौसम का सामना
- अनुपयुक्त/अपर्याप्त खीस द्वारा पोषण
- अपर्याप्त/अनुपयुक्त पोषण
- परजैविकीय प्रकोप
- तत्काल रोग जाँच व्यवस्था का अभाव
- रोग संरक्षण का अभाव

**निम्नलिखित कार्यकलापों के द्वारा भेड़ बकरियों को स्वस्थ रखा जा सकता है :**

- बुनियादी बकरियों की खरीद केवल ऐसे क्षेत्रों से ही की जाये जो बीमारियों से रहित हों।
- खरीदे गये पशुओं को क्वारेन्टाइन आवास में रखकर, उनमें उचित समय पर सभी आवश्यक स्वास्थ्य कार्यक्रम जैसे टीकाकरण, परजीवीनाशन तथा दवायुक्त पानी के द्वारा स्नान आदि क्रियाकलाप सम्पन्न करायें।
- खाद्य पोषण व्यवस्था की उत्तम विधियों को अपनाकर समय–समय पर पशुओं का निरीक्षण/जाँच करायें जिसके आधार पर कुछ महत्वपूर्ण कुपोषण जनित बीमारियों से ग्रसित पशुओं की पहचान कर उचित कार्यवाही की जा सके।
- रोगों से बचाव के लिए प्रभावकारी प्रतिरोधक टीके तथा सीरम का प्रयोग।

**बकरी स्वास्थ्य स्थायित्व हेतु कुछ महत्वपूर्ण सावधानियाँ**

- सम्भावित/अक्सर फैलाने वाली बीमारियों के बचाव के प्रतिरोधक टीके उचित समय पर अवश्य लगवायें।
- अनावश्यक उपचार कर औषधियों का दुरूपयोग न करें।
- निश्चित समयान्तराल पर जुऐं, किल्लियों को समाप्त करने हेतु सावधानीपूर्वक सुरक्षित दवायुक्त जल स्नान अवश्य करायें।

- वर्षा ऋतु में आवास को स्वच्छ एवं सूखा रखा जाये।
- यातायात के समय पशुओं की खाद्य आपूर्ति घटाकर उनको पर्याप्त मात्रा में पानी के साथ इलेक्ट्रोलाइट घोलकर देना चाहिए।
- बकरियों के पीने के पानी की टंकी की सफाई सप्ताह में एक बार अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।
- बकरी के बच्चे जब 15 दिन के हो जाये तो उन्हें खाने में हरी घास एवं पत्तियाँ देना चाहिए जो कि उनके पेट के विकास में सहायक होती हैं।
- दूध देने वाली बकरियों को अन्य बकरियों से अलग रखना चाहिए।

## बकरी पालन के लिए स्वास्थ्य कार्यक्रम

केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान में क्रियान्वित बकरी स्वास्थ्य बचाव कार्यक्रम

**अ. रोगो के विरुद्ध टीकाकरण**

| बीमारी | प्रारम्भिक टीकाकरण का समय | | वार्षिक टीकाकरण का समय | संस्तुति, यदि कोई हो |
|---|---|---|---|---|
| | प्रथम टीकाकरण | प्रभाववर्धक टीका | | |
| खुरपका एवं मुँहपका रोग | 3 माह | प्रथम टीके से 3–4 सप्ताह पश्चात् | हर 6 माह के अन्तराल पर | – |
| (पी.पी.आर.) पेस्टी डेस पेटिटस रूमीनेन्टस् | 4 माह | – | आवश्यक नहीं | – |
| बकरियों की चेचक (गोट पोक्स) | 3 से 5 माह | प्रथम टीके से 3–4 सप्ताह पश्चात् | वार्षिक टीकाकरण | भारत के पूर्वी, पश्चिमोत्तर एवं दक्षिणी पश्चिमी भागों में प्रयोग की संस्तुति |
| जहरीले दस्त (फिड़किया) (एन्ट्रोटोक्सिीमिया) | 3 से 4 माह | प्रथम टीके से 3–4 सप्ताह पश्चात् | वार्षिक टीकाकरण | – |
| गलघोंटू (हीमोरेजिक सेप्टीसीमिया) | 3 से 4 माह | प्रथम टीके से 3–4 सप्ताह पश्चात् | वार्षिक टीकाकरण | देश के दक्षिणी एवं पश्चिमी भागों में प्रयोग करने की संस्तुति |

**ब. कृमिनाशक कार्यक्रम**

| प्रकोप | उम्र | भेषज व्यवस्था काल | भेषजयुक्त खाद्य मिश्रण संस्तुति यदि कोई हो |
|---|---|---|---|
| कोक्सीडियोसिस | 2 से 6 माह | कोई भी कोक्सीडियोस्टेट लगातार एक सप्ताह तक | मोनेन्सिन 20 ग्रा./100 किग्रा. दाना मिश्रण में मिलाकर 6 माह तक की उम्र तक खिलाना |
| अन्तः परजीवी (एन्डोपैरासाइट्स) | 5 माह के बाद | वर्षाकाल से पूर्व एवं उसके उपरान्त | – |
| जूऐं (लाईस) | – | सर्द काल से पूर्व एवं उसके उपरान्त | – |

| | | |
|---|---|---|
| किलनियाँ (टिक्स) | – वर्षाकाल के महीनों में | – |

**स. नियमित निरीक्षण (छँटाई)**

| व्याधि | अंतराल | संस्तुतियाँ |
|---|---|---|
| ब्रूसेलोसिस (संक्रामक गर्भपात) | वर्ष में एक बार | रूग्ण (प्रभावित) पशु निष्कासन के लिए तदैव |
| जोहन्स रोग (आँतों की टी.वी.) | वर्ष में एक बार विशेषकर पशु ब्याने के पश्चात् | |
| माइकोप्लाज्मोसिस | वर्ष में एक बार | विशेष औषधियों से उपचार |

**रोगी बकरियों के रोग की प्रयोगशाला जांच हेतु नमूना एकत्रीकरण एवं निस्तारण के कुछ सुझाव**

| नमूना | मात्रा | एकत्रीकरण सुरक्षित कर निस्तारण करने की विधि |
|---|---|---|
| रक्त (सीरम) | 5 एम.एल. | काँच की छोटी बोतल में एकत्रित करने के बाद बोतल का ढक्कन लगाकर बर्फ युक्त थर्मस फ्लास्क में रखकर शीघ्रातिशीघ्र प्रयोगशाला भेजें। |
| मृत पशु के अंगों जैसे फेफड़े, जिगर, यकृत, लिम्फनोड, आँतें इत्यादि | 5 से 10 ग्राम | पोलीथिन की थैली में रखकर इस बर्फ युक्त थर्मस फ्लास्क में रखकर शीघ्रतिशीघ्र प्रयोगशाला भेजें। |

**विशेष :** 1. नमूनों के साथ बीमारी के बारे में पूर्ण जानकारी जैसे कि बीमार पशु के लक्षण, कितने पशु बीमार हुए, पूर्व में टीकाकरण कराया गया अथवा नहीं अवश्य भेंजें।

2. नमूनों के एकत्रीकरण एवं सुरक्षित निस्तारण हेतु निकट के पशुचिकित्सक की सहायता लें।

**मुख्य बीमारियों की रोकथाम के टीके प्राप्त करने के स्थान :**

| रोग | टीका का नाम | प्राप्ति स्थान का पता |
|---|---|---|
| 1. पी.पी.आर. (बकरी प्लेग) | पी.पी.आर. वैक्सीन (फ्रीजड्राइड) | निदेशक, आई.वी.आर.आई. मुक्तेश्वर जिला नैनीताल (उत्तरांचल)। |
| 2. मुँहपका–खुरपका (एफ.एम.डी.) | (अ.) एफ.एम.डी. वैक्सीन | निदेशक, आई.वी.आर.आई. हेब्बल, बंगलौर (कर्नाटक)। |
| | (ब.) एफ.एम.डी. (रक्षा वैक्सीन) | निदेशक, इण्डियन इम्यूनोलोजीकल्स 1499/32 दुर्गापुरी शहादरा दिल्ली–93 । |
| 3. फिड़किया/जहरीले दस्त (एन्ट्रोटोक्सीमिया) | ई.टी. वैक्सीन | • बायोलोजीकल प्रोडक्ट सैक्शन, आई.वी आर. आई. इज्जतनगर, बरेली, उ.प्र.।<br>• बी.पी. सैक्शन, पशुपालन विभाग बादशाह बाग, लखनऊ। |
| 4. गलघोंटू (एच.एस.) | एच.एस. ऐडजूवैन्ट वैक्सीन | वी.पी. डिविजन आई.वी.आर. आई. इज्जतनगर। |

**विशेष :** उपर्युक्त टीकों के प्राप्ति स्थानों के अलावा पशुपालक टीके प्राप्त करने हेतु अपने राज्यों के स्थानीय बायोलोजीकल प्रोडक्ट सेन्टर, पशुपालन विभाग से सम्पर्क साधकर अन्य प्राप्ति स्थानों की जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं।

# बकरी के दूध दुहने की पद्धतियाँ

दूध एक महत्वपूर्ण पशु उत्पाद है जो स्तनधारियों के नवजात शिशुओं के विकास के लिए अत्यावश्यक है। जन्म के बाद मादा से प्राप्त होने वाला प्रथम दूध, 'खीस' नवजात शिशुओं के लिये प्रकृति का एक उत्तम वरदान है क्योंकि इसमें विद्यमान तत्व, उनको अनेक रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करते हैं। इसी गुण को ध्यान में रखकर नवजात शिशु को तीन–चार दिन तक खीस पिलाना आवश्यक होता है। बकरी अपने शारीरिक भार के अनुपात में गाय व भैंस की तुलना में अधिक दूध देती है। गाय के दूध से एलर्जी तथा अन्य रोगों में बकरी का दूध सेवन करने की सलाह दी जाती है। बकरी का दूध क्षारीय गुणों वाला होने के कारण पेट से संबंधित अनेक रोगों में लाभकारी होता है। बकरी का दूध नवजात शिशु, बच्चों व बुजुर्गों के लिये गाय के दूध की तुलना में अधिक पौष्टिक व जल्दी पचने वाला होता है, जिसका मुख्य कारण बकरी के दूध में वसा कणों के आकार (1 माइक्रोन तक) गाय व भैंस के वसा कणों के आकार (1 से 3 माइक्रोन) से छोटा होना है। इसके दूध से बनी दही गाय व भैंस के दही की तुलना में हल्की होती है तथा इसमें पायी जाने वाली प्रोटीन अधिक सुपाच्य होती है।

बकरी व्यवसाय में बकरी पालकों के सामने एक समस्या आती है कि स्वच्छ दूध कैसे प्राप्त किया जाय तथा दूध निकालने के लिये कौनसी विधि अपनायी जाए? प्रस्तुत लेख में इनका वर्णन किया गया है।

**दूध दुहने में ध्यान रखने योग्य बातें :–**

- बकरी को दोहन करते समय दीवार के साथ खड़ा करें ताकि वह इधर–उधर न जा सके।
- बकरी से दूध यद्यपि किसी भी समय दुहा जा सकता है परन्तु 12 घण्टों के अंतराल पर दूध निकालने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।
- बकरी के अयन के चारों तरफ के बाल कटे होने चाहिए।

दूध दोहने से पहले बकरी के थनों को गुनगुने पानी या लाल दवा के तनु घोल से धोंये।

**1. हाथ द्वारा दूध निकालने की विभिन्न विधियाँ**

(i) **अंगूठे द्वारा** :– इस विधि में अंगूठा, उंगलियों तथा हथेली के बीच में रहता है जिनसे थन पर दबाब डाला जाता है। दोहने के लिये यह विधि अधिक उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें थन पर आवश्यक दबाब नहीं पड़ता। बकरी भी दोहने के समय आराम महसूस नहीं करती। कई बार इस विधि से थनों में खराबी आ जाती है।

(ii) **चुटकी द्वारा** :– इस विधि से दूध एक अंगूठे व दो उंगलियों से निकाला जाता है। इसमें पहली उंगली व अंगूठें द्वारा थन को ऊपर से दबाया जाता है और फिर धीरे–धीरे दूसरी उंगली द्वारा दबाब डालकर नीचे की तरफ खींचा जाता है। दबाब बढ़ने पर थन के छिद्र खुल जाते हैं और थन से दूध बाहर आ जाता है। यह विधि भी दूध निकालने के लिये ज्यादा उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें थन के ऊपरी भाग पर ज्यादा दबाब पड़ता है जिससें थनों का आकार बदल जाता है।

(iii) **मुट्ठी द्वाराः**– इस विधि से दोहन करते समय पूरे हाथ का प्रयोग होता है। इसमें हाथ द्वारा थन को इस प्रकार पकड़ा जाता है कि थन के चारों ओर पहली उंगली तथा बाहर की तरफ से अंगूठा

आ जाता है। थन के ऊपर से अंगूठे द्वारा दबाब डालने पर अयन से दूध थन में आता है। जैसे–जैसे थन के ऊपर उंगलियों का दबाव बढ़ता जाता है थन का छिद्र खुलने से दूध बाहर निकलता है। साथ–साथ दूसरे हाथ से दूसरे थन का दूध भी इसी प्रकार निकाला जाता है। अयन खाली होने तक यह प्रक्रिया जारी रहती है। अंत में अयन को हाथो द्वारा ऊपर से हल्का दबाकर थनों की तरफ लेकर आने से बचा हुआ दूध, भी थनों में आ जाता है। इस दूध में पहले दूध की अपेक्षा अधिक वसा होती है।

## विभिन्न विधियों का तुलनात्मक अध्ययन

उपरोक्त विधियों में मुट्ठी विधि सबसे उपयुक्त है क्योंकि इसमें थन पर समान दबाव पड़ता है और बकरी को भी दोहन के समय परेशानी महसूस नहीं होती। इस विधि से दोहन में कम समय लगता है। एक अच्छा दोहन करने वाला एक घण्टे में लगभग 15 से 18 बकरियों को दुह सकता है। यद्यपि यह बात दोहन कला व थनों के छिद्र पर भी निर्भर करती है।

स्रोत : केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मकदूम, उत्तर प्रदेश